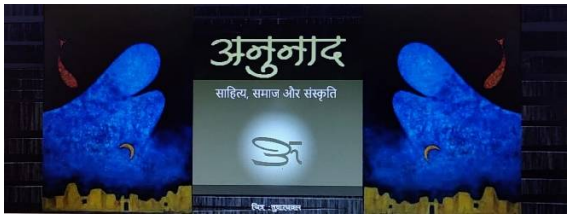

अनुनाद

साहित्य के जन-सरोकारों की ऑनलाइन त्रैमासिक पत्रिका

संयुक्तांक : 2022

सम्पादक – शिरीष मौर्य / मेधा नैलवाल

अनुक्रम

1. जिन सड़कों से गुज़रता हूं – शंकरानन्द की कविताएं / 3
2. कोंपलें नहीं फूट रही – डोगरी कवि ध्यान सिंह की कविताएं : अनुवाद – कमलजीत चौधरी /6
3. उम्र में तीस के बाद ज़िन्दगी एक समतल मैदान बन जाती है – शचीन्द्र आर्य की कविताएं / 10
4. रोने से शरीर का अशुद्ध जल बाहर निकल जाता है – अनुष्का पाण्डेय / 13
5. बहुत अधिक मामूली लोगों में जो महानता छिपी होती है वह हम देख नहीं पाते – जोशना बैनर्जी आडवाणी की कविताएं/15
6. अपनी समझ के संग्रहालय को खंगालते हुए – ऋतु डिमरी नौटियाल की कविताएं/25
7. बढ़ता ही जाता पृथ्वी पर भयावह सन्नाटा – मोहन कुमार डहेरिया/31
8. समकालीन कविता में भारत बोध (आलेख) – दीक्षा मेहरा /35
9. बतखोर आंखों के आगे -वीरेन्द्र दुबे की कविताएं /40
10. गहन निराशा भी ताक़तवर होती है : (समीक्षा) कुमार अम्बुज के संग्रह 'उपशीर्षक' पर दयाशंकर शरण/43
11. एडम ज़गायेव्स्की की तीन कविताएं : अंग्रेज़ी से अनुवाद – अंजलि नैलवाल/48
12. जब भी को स्थायी पता पूछता है – ललन चतुर्वेदी की कविताएं /51
13. होने और न होने के बीच – अशोक कुमार की कविताएं /55
14. शुद्धता एक मिथक है – देवेश पथ सारिया की कविताएं /59
15. टर्रापन लिए मीठे फल – भूपेन्द्र बिष्ट की कविताएं /64
16. कैरिबियाई कवि डेरेक वॉलकाट की दस कविताएं : चयन एवं अनुवाद – श्रीविलास सिंह /69
17. दुबई एक रंगीन सिगरेट की डिब्बी की शक्ल में - गौरव सिंह की कविताएं/75
18. एक उड़ती चिड़िया की ओर - नेहल शाह की कविताएं /77
19. बारहों ऋतु में ठहरा तुम्हारा स्पर्श – गीता गैरोला की कविताएं/84
20. पेड़ और पत्तों की रज़ामंदी से आता है पतझड़ – राही डूमरचीर की कविताएं/87
21. ईश्वर को प्राप्त है हर चीज़ की आड़ – योगेश ध्यानी की कविताएं /90
22. बेटियों के गुमसुम रहने से पिताओं की उम्र कम होती है – सपना भट्ट की कविताएं /96
23. बारिश ईश्वर का दिया तोहफ़ा नहीं है- दिव्या श्री की कविताएं /101
24. कुमार अनुपम और आमोद माहेवरी से मेधा नैलवाल की बातचीत /104

जिन सड़कों से गुजरता हूं - शंकरानंद की कविताएं

शंकरानंद समकालीन हिन्दी कविता के सम्मानित और सुपरिचित रहवासी हैं। उनकी ये कविताएं समाज और राजनीति में इधर बहुप्रसारित 'सूची'बद्ध प्रकाश के बीच अवस्थित नागरिक जीवन की द्वाभा की कविताएं हैं। कवि का अनुनाद पर स्वागत है।

सूची का काम

नाम गिनाना अब एक कला है
बनती हुई सूचियां
दरअसल हमले की एक तैयारी होती है
जो इससे बाहर हैं
वे अभिशप्त हैं
उनका होना एक खतरे जैसा है

जितनी सूचियां बन रही हैं
उतने में बंट गए हैं स्वप्न
अब हर लड़ाई खुद की है
हर वार खुद झेलना है

ये योजना बनाने जैसा ही है
उनका बनना दिखता है
लेकिन बनने के बाद
जैसे अधिकांश योजनाएं
दम तोड़ देती हैं
वैसे ही ये सूची धुंधली पड़ जाती है
इसके कागज कुतर जाता है समय

इसके बावजूद
व्यवस्था सूची बनवाती है
सरकार के पास हर सूची उपलब्ध है
वह फाइल में दबी हुई है

फिर धीरे धीरे वह खिसकते हुए
कूड़ेदान तक पहुंच जाती है

एक दिन उसके बोझ को
कम करने के लिए
उसमें तीली लगा दी जाती है।

चमकती दोपहर में

जिन सड़कों से गुजरता हूं
उसके पास के घरों की आवाजें
छन कर बाहर आती हैं
जबकि उनके बाहर आने पर पाबंदी है

हवा के साथ आती है
एक मामूली सी चीख
जो किसी स्त्री कीहै

उंगलियों का कटना और
खून का बहना
यह रोज की बात है

आग में जलते हुए तवे पर
हाथ की छाप से
रोटी के स्वाद पर
कोई फर्क नहीं पड़ता
फटे को सिलने की
एक कोशिश में
बीत जाते हैं दिन
सूई की नोंक चुभती है तो
आह तक नहीं निकलती

कितना कुछ है जो
सिर्फ इसलिए बाकी है कि
इसे एक स्त्री को ही पूरा करना है
जब तक वह पूरा नहीं कर लेगी
कुछ नया काम निकल आएगा और
बढ़ जाएगी उसकी बेचैनी थोड़ी और

चमकती दोपहर मेंएक स्त्री की चीख
स्थाई भाव की तरह है
जिसका होना रोज के धूप जितनी
मामूली बात है

इसपर कोई बहस नहीं होती!

बुलडोजर के बीच

जिन घरों को बनाने में महीनों लग गए
न जाने कितने मौसम की बाधा आई
बारिश की चोट में
माथा भीगा अनगिनत बार
धूप से चेहरे का रंग बदल गया
रोम रोम में धूल की गंध बस गई
मिट्टी की चमक पड़ती रही देह पर रोज
तब जाकर पूरा हुआ एक घर

एक एक ईंट को जमा करना
तिनके जमा करने जितना ही
कठिन काम है

लेकिन चिड़िया
अपने तिनके नहीं नोचती
वह तो उसकी मरम्मत करती है
कुछ बिगड़ जाने के बाद

अभी आ रही है
उसी बने घर के टूटने की आवाज
जिस ईंट को मुश्किल से जोड़ा गया
अब उसे तोड़ा जा रहा लगातार

बहुत चीख निकलती है इस तरह
जरूर किसी की सांस
टूट रही है ईंट के साथ।

एक कलम

पिता की कलम को देखता हूं तो
वह मुझसे
पिता के होने का पता पूछती है
वह खाली पड़ी है

पिछले कई सालों से
मुझमें इतनी हिम्मत नहीं कि
उसे थाम सकूं अपनी उंगलियों से

मुझे नहीं लगता कि
वह कलम मेरा साथ देगी
वह लिखेगी या
लिखने से इंकार कर देगी
नहीं कह सकता मैं
लेकिन देखती है वह अपलक
जैसे स्त्री राह देखती है
दरवाजा खोल कर
जो गया उसके लौटने की आशा में

अक्सर यही होता है कि
चीजें तकपहचानती हैं
मनुष्य के होने की छाप
वह छाप नहीं मिलती तो
शोक में वे चीजें
धीरे धीरे टूट जाती हैं

जैसे अपने पक्षी के
लौटने की चाह में ही
कोई घोंसला जिंदा रहता है
कई महीनों तक और
नहीं लौटने के शोक में
वह धीरे-धीरे उजड़ जाता है।

विभाजन के बाद

गिनने के लिए
बहुत कुछ है हिस्से में
लेकिन उनका होना और नहीं होना
दोनों एक जैसा है

घर की दीवारें सुंदर हैं
उनकी चमक बहुत गहरी है
मुश्किल यह है कि
वह अकेलेपन को नहीं बांट सकती

कागज है और रंग भी
लेकिन रंग भरने की
लालसा ही खत्म हो गई
यह सन्नाटा रंग के बिना
बहुत भयानक लगता है
जिद अंततः बहुत भारी पड़ती है
हर चीज को बांटना
अलग अलग कर संभालना
अपने अपने हिस्से
बहुत कुछ खत्म कर देता है

विभाजन के बाद
दो लोग एक दूसरे को देखना नहीं चाहते
उनकी भाषा नीचे की ओर
जाती हुई दिखती है
वे उस तरह भी नहीं रहना चाहते
जैसे रेल में एक सीट पर
अगल बगल बैठते हैं दो अजनबी

कोई गांठ पड़ जाती है प्यार में
काई जम जाती है भरोसे पर
कुछ काम नहीं आता एक दिन

वैभव के बीचचीजें होती हैं
उनके बीचजीता हुआ मनुष्य
एक दिन बहुत अकेला पड़ जाता है

ये अकेलापन उसे घुन की तरह खाता है।
***

संपर्क-क्रांति भवन,कृष्णा नगर,खगरिया-८५१२०४
मोबाइल-८९८६९३३०४९

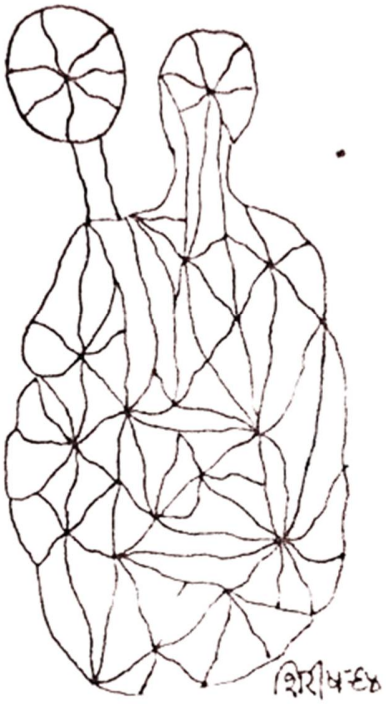

कोंपलें नहीं फूट रहीं - डोगरी कवि ध्यान सिंह की कविताएं अनुवाद एवं प्रस्तुति - कमल जीत चौधरी

डोगरी के कवि ध्यान सिंह की पंक्ति **कोंपलें नहीं फूट रहीं** , महज कविता की नहीं, सामाजिक जीवन और उसकी दशा-दिशा की भी टीस बनकर खुलती है। युवा कवि कमल जीत चौधरी ने अनुनाद के लिए इन कविताओं के अनुवाद सम्भव किए हैं। अनुनाद भारतीय जनमानस के समकाल में गूंज की तरह शामिल इन कविताओं के लिए कवि और अनुवादक का आभारी है।

एक पहेली

अँधेरी कब्र
जिसमें किसी की लोथ* नहीं,
हो तो; मिट्टी बन गई हो
बे-चराग़ कब्र
जो गल गयी हो
पोली पड़ गयी हो
कबाड़ का मलबा बन गई हो

जिसे कोई मुफ़्त भी नहीं उठा रहा हो
...
क्या यह मुमकिन नहीं
कि इसके अवशेष में से
कूड़ा बीनते बच्चों को
कुछ किरचें
कुछ कील मिलें
किसी नई कब्र के लिए:
और यह 'मिलना' एक पहेली बन जाए।
  ००
*लोथ - लाश

रिक्शा चालक

पनघट की पीड़ा,
रुक्ख* उठाए है
पडुक्ख**
कभी ख़त्म हो यह दुःख।

मानव की आस
जीवन को सीध मिले
होती शरारत नित
यह दुःख और लाचारी है

देता हूँ दुहाई -
'करूँ जो कमाई
खाता कोई दूसरा'
रुक्ख उठाए है
पडुक्ख

मन बड़ा भारी है,
भारी है
सवारी भी;
पेड़ को उठाए पेड़
मगर आदमी को आदमी?
  ००
 *रुक्ख- वृक्ष
**पडुक्ख- पेड़ के ऊपर उगने वाला पेड़

छाया

वृक्ष;
जलस्रोतों के ऊपर
शीतल छाया करते हैं
सीधे खड़े
आग फाँकते;
स्वयं तपते रहते हैं

तपी हुई छायाओं को
पानी; तारी* नहीं लगाने देता
सतह पर ही नचाता
ज़रा भी विश्राम नहीं करने देता
स्वयं लहरों पर अठखेलियाँ करता
सूरज भी दिन दोपहर
अपनी चाल चलाता रहता

दिन खत्म होता अँधेरे में

उधार लिए जीवन को जब पनघट मिलता
मैं भी जलते-बलते सूरज डूबते
संध्या तले
घर लौटता हूँ।
  ००
तारी*- डुबकी

जेबें

मेरी जेबों में
अक्सर हवा रहती है

इन्हें टटोलूँ
तो हवा कम लगने लगती है
शायद इनके कोनों में छुप जाती है
मेरे हाथों को शर्मिंदा होकर
खोटे पैसे की तरह वापस लौटना पड़ता है
मेरा अभावग्रस्त
प्यासा मन
बहलाए नहीं बहलता:

मैं उस दर्जी की निंदा करता हूँ
जिसने यह जेबें बनाई हैं।
००

चाँद

घुप्प अँधेरे में चाँद निकला
तो मैंने किसी से पूछा
चाँद देखा है?
कितना सुन्दर
देखो ऊपर,
उसने कहा
मक्की की रोटी जैसा है
मुझे भान हुआ कि वह भूखा है
उसे घर ले जाकर
मैंने झटपट एक रोटी खिलाई
फिर पूछा; चाँद कैसा है?
उसने कहा
आग के गोले जैसा है
उसे ठंडा पानी पिलाकर
मैंने फिर पूछा: चाँद कैसा है?
उसने कहा
एक सपने जैसा है

मैंने उसे बिस्तर दिया...
और कामना की:
'उसे रोटी और आग मिले।'
००

छींकें

बजती हैं
सुनाई देती हैं

सिर्फ छींकें ही छींकें

सिर फोड़तीं
कान फाड़तीं
श्वास जलातीं
कृष्ण पक्ष की पैहरेदार छींकें

लोकवादी, जनवादी आस्था पर
तार्किक विचारों पर
हावी हुई छींकें

अभिव्यक्ति पर बनी खतरा

सपनों को टोकतीं
साँसों को दबोचतीं
भविष्य-वाणी करतीं

सत्ता समर्थक
संवेदनहीन छींकें

संचार के
विचार के हर माध्यम में
सुनाई देती हैं
व्यंजित करती हैं
अन्योक्ति
दुःख देने वाली
धूनी लगीं

छींके ही छींकें...
पल्ले पड़ी मनहूस छींकें।
००

कामना

धुंधभरी सड़क पर
कुत्तों के पहरे में
सफेद काली व्याकुल भेड़ें
एक दूसरे से घिरते घिसटते
बूचड़खाने की ओर जा रही हैं
जहाँ दलाल इनका स्वागत करेंगे
इस झुंड की अपनी कोई कीमत नहीं है
इसने अपना अस्तित्व अन्य हाथों में सौंप दिया है

घास फूस चरती
इनकी गर्दनें
ढीली और नीची कब तक रहेंगी?

यह भेड़ें कभी तो मुँह ऊपर उठाएँ
भेड़ियों से भिड़ जाएँ
व्याकुल झुंड
समूह में बदलकर
बूचड़खानों को तबाह कर दें।
००

कोंपले नहीं फूट रहीं

कोंपलें नहीं फूट रहीं

जब कोंपल नहीं तो पत्ता कहाँ
कलियाँ कहाँ; फूल कहाँ

जब फूल नहीं
तो भवरें कहाँ
रंग कहाँ; खुशबू कहाँ

खुशबू नहीं
तो साँसों को चाव कहाँ
स्निग्धता का अन्तरभाव कहाँ
मीठा मीठा स्पर्श कहाँ

कोंपलें नहीं फूट रहीं
आशाएँ नहीं हिलोर रहीं

बादलों से घिरे मौसमों से पूछो कभी
कि अन्दर क्या-क्या दबा है?
००

ध्यान सिंह

ध्यान सिंह का जन्म 2 मार्च 1939 ई. को जम्मू के गाँव घरोटा में हुआ। वे डोगरी के वरिष्ठ कवि-लेखक हैं। इनका लेखन सामाजिक व राजनीतिक चेतना से

लैस है। इन्होंने डुग्गर प्रांत में लोक संस्कृति के संरक्षण हेतु पर्याप्त कार्य किया है, वे अभी भी सक्रिय हैं। विभिन्न साहित्यिक विधाओं में इनकी लगभग पचास किताबें प्रकाशित हैं। इन्होंने 'कल्हण' का डोगरी अनुवाद भी किया है। 2009 में इन्हें 'परछामें दी लो' शीर्षक कविता संग्रह पर साहित्य अकादमी और 2014 में बाल साहित्य पुरस्कार मिला है। इनकी कविताओं के कुछ अनुवाद प्रसिद्ध हिन्दी पत्रिकाओं 'सदानीरा' और 'पहली बार' पर भी पढ़े जा सकते हैं।

सम्पर्क:
गाँव व डाक- बटैहड़ा
तहसील व ज़िला- जम्मू, पिन कोड- 181206
जम्मू-कश्मीर
फोन नम्बर- 919259879

कमल जीत चौधरी

सम्पर्क: गाँव व डाक- काली बड़ी,तहसील व ज़िला- साम्बा, पिन कोड- 184121जम्मू-कश्मीर
फोन नम्बर- 9419274404

उम्र में तीस के बाद ज़िंदगी एक समतल मैदान बन जाती- शचीन्द्र आर्य की कविताएं

उम्र में तीस के बाद

वह एक अरसे से सोच रहा है,
उम्र में तीस के बाद ज़िंदगी एक समतल मैदान बन जाती,
जिस पर चलना, दौड़ना, रेंगना सब एक साथ किया जा सकता ।

बस एक नौकरी होती ।
महीने में एक बार आने वाली तनख्वाह होती,
अपने दिनों को कुछ पैसों में तब्दील कर पाता तो क्या बात होती ।

यह शादी और बच्चों से बहुत पहले एक नौकरी का लग जाना है ।
सबकी नज़र में यह अपनी मुकम्मल दुनिया बनाकर उसमें रहने के दिन हैं ।

मैंने भी कभी सोचा था,
यहाँ तक आते-आते लहरें रेत को छूने लगेंगी

और मेरा जीवन भी पानी की तरह बहने लगेगा ।

इसी में हर शाम दफ़्तर से घर लौटता ।
घर लौटकर तुम्हारी पीठ पर इत्मीनान से हाथ फेरता ।
ऐसा करते हुए कभी बच्चों के दिख जाने पर तुम्हारे नहीं उनके गाल चूमते हुए बिलकुल नहीं खीजता ।

इसी उम्र में रिश्तेदारों से बहुत दूर बैठे
बेटे, भाई, चाचा, दामाद, फूफा
होते हुए लंबी-चौड़ी बहसो के बाद झगड़े अपने आप ख़त्म कर देता ।

यह गर्मियों की छुट्टियों में गाँव न जाकर बीवी और बच्चों को पहाड़ों पर भेज कर
माता-पिता के साथ सुदूर दक्षिण में कहीं जाने की इच्छा में यहीं दिल्ली में रुक जाना था ।

कमोबेश यही दो-तीन इच्छाएं रही होंगी सबकी ज़िंदगी में,
इसलिए भी अक्सर जो लोग मिलते हैं, वह उम्र पूछते हैं ।

जैसे सब पहले से तय हो,
एक नियमित क्रम की तरह सबके जीवन में यह सब घटनाएँ घट रही हों ।
***

गर्दन पर ज़ोर डालते हुए

मंचों को इतना भव्य कभी नहीं होना था,
वह होते थोड़े संवेदनशील,
उन रचनाओं की तरह, जो लिखी थी,
उन रचनाओं से बड़े कवि, कहानीकार और कलम घिसने वालो ने ।

उन्हें अड़ कर खड़ा नहीं होना था, खजूर के पेड़ की तरह ।
उन्हें किसी भाषा में आए
फल और फूल से लदे वृक्ष की तरह झुक जाना था ।

उनका ऐसा होना
इसलिए भी जरूरी था
कि हो सकता है
कभी
कोई बात,
कोई पात्र,
किसी रचना से बाहर निकल आए
और
अपने रचनाकार को देखने की गरज से
इन भव्य मंचों की तरफ ताकने के लिए हिम्मत भी न जुटा पाये ।
***

प्लेटफ़ॉर्म की ऊब

किसी खाली सुनसान स्टेशन के प्लेटफ़ॉर्म की तरह उस अकेलेपन में इंतज़ार कर देखना चाहता हूँ,
कैसा हो जाता होगा कोई, जब वहाँ कोई नहीं होता होगा ।

एक आवाज़ भी नहीं होती होगी ।

कहीं कोई दिख नहीं पड़ता होगा ।
बस होती होगी, अंदर तक उतरती खामोशी ।

दूर, घुप्प अँधेरे सा इंतज़ार करता, ऊँघता, ऊबता
के इस अँधेरे में सरसराती मालगाड़ी जब सियालदह
से चल पड़ेगी,
तब उसके सतहत्तर घंटे बाद कहीं यहाँ पहली
हलचल होगी ।
हफ़्ते में आने वाली एक ही गाड़ी । पहली और
आख़िरी।

वरना, उस सोते हुए स्टेशन मास्टर के पास
इतना वक़्त कहाँ था कि उन खाली पड़े
मालगोदामों में
किराये पर रखे पौने सात लोगों पर रखी एक स्त्री के
साथ संभोग करता
और उसके होने वाले बच्चे से इस अकेलेपन को
कम करने की सोचता ।

ऐसा करने से पहले, पहली बार जब यह विचार
उसके मन में आया
तब चुपके से उसने प्लेटफ़ॉर्म से पूछा था ।
वह मान भी गया था । उसने भी हाँ भर दी थी ।
वह भी अकेला रहते-रहते थक गया था ।

अब नहीं सही जाती थी,
गार्ड के खंखारते गले से निकलते बलगम की
जमीन पर धप्प से गिरने की आवाज़ ।
नहीं सुनना चाहता था, उस लोकोमोटिव पायलेट
की गालियाँ ।
उन जबरदस्ती उठा लायी गयी लड़कियों की
चीख़ ।

उन्हें कराहते हुए छोड़ भाग जाते लड़कों के कदमों
की आवाज़ ।

वह उन कराहती चीख़ों से डर कर भाग जाते हैं ।
वह नहीं डरेगा, नहीं भागेगा ।
वह सिर्फ़ उस नए जन्मे बच्चे के साथ खेलेगा ।
***

माचिस की तिल्लियां

माचिस की तिल्ली भी बता सकती है, भूख को ।

बहुत आसान है,
यह जानना कौन-कौन भूखा है,
किसे भरपेट खाना नहीं मिला है,
किसके शरीर पर कितने पाव मांस लटक रहा है,
किसका पंजर, कितनी हड्डियों से बना है ।
कौन सिर्फ नाम का ही जिंदा है ।

यह काम हाथ में
माचिस की तिल्ली लेने
जितना हल्का और छोटा है ।

जबकि आपने अपने हाथ में
माचिस की तिल्ली ले ही ली है
तो देखिए,
कैसी दिखती है, माचिस की तिल्ली ?

दुबली पतली,
जिसकी खून लाने ले जाने
वाली नसें भी दिख नहीं पा रही ।
वजन हवा से भी हल्का ।

धूप या किसी रौशनी में
परछाईं बनने के लिए अपर्याप्त शरीर ।
केवल शीर्ष पर फास्फोरस का सिर लिए डोलती हुई ।

ऐसी कई चलती-फिरती आकृतियां
गली, कूचों, मोहल्लों में शहर-शहर माचिस की तिल्लियों सा जीवन व्यतीत कर रही हैं। फिर भी इन्हें कोई माचिस की तिल्ली नहीं मान रहा ।
***

परिचय

जन्म- ०९ जनवरी, १९८५
दिल्ली विश्वविद्यालय से हिन्दी में स्नातकोत्तर करने के पश्चात इसी विश्वविद्यालय से बीएड और एमएड ।
पूर्व में कुछ कविताएँ 'हंस', 'वागर्थ' और 'पहल' तथा 'समकालीन भारतीय साहित्य' में प्रकाशित । 'हंस' में डायरी के कुछ अंश तथा एक कहानी 'चुप घर' का प्रकाशन ।
shachinderkidaak@gmail.com

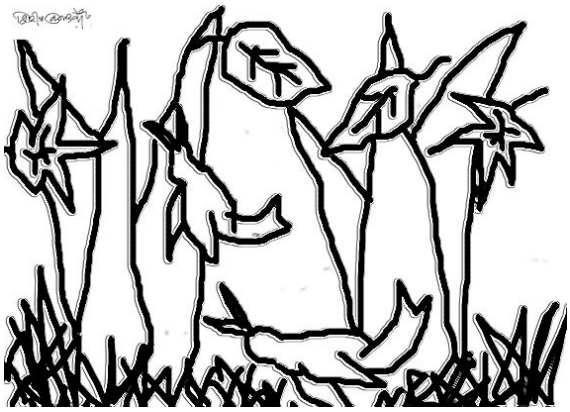

रोने से शरीर का अशुद्ध जल बाहर निकल जाता है - अनुष्का पाण्डेय की कविताएं

अनुष्का पाण्डेय की कविताएँ सीधे-सरल संसार के उतने ही सरल प्रश्नों से निकलती-उलझती कविताएं लगती हैं, किन्तु यह भी याद दिलाती चलती हैं कि हर सरलता का एक जटिल सिरा होता है। कवि के जीवनानुभवों का संसार अभी बहुत नया और बनता हुआ संसार है।

Leaf Landscape

विष्णु चिंचालकर

भेड़िए

तंग, सुनसान हो या भीड़-भाड़ वाली गली हो
मैं हर गली में चलने से डरती हूँ
क्योंकि मैं जानती हूं कि कोई ना कोई

भेड़िया मुझे अपने शिकारी नज़रों से देख रहा है
'नज़र झुका कर चलती जाती हूँ

इन गलियों से मुझे मालूम है कि अगर मैने
नज़रें मिलाई
भेड़िए मुझे दबोच खायेंगें

मैं चलती जाती हूँ,
इन गलियों में
और निरन्तर चलती रहूंगी,
भेड़ियों से बिना नज़रें मिलाए
और पहुँच जाऊंगी
एक न एक दिन
अपने मंज़िल के रास्ते पर.....

मैं जी भर रोती हूं

मैं जी भर रोती हूँ
सुना है रोने से शरीर का
अशुद्ध जल बाहर निकल जाता है

मैं जी भर रोती हूँ
रोने को एक जीवन प्रक्रिया समझकर

मैं जी भर रोती हूँ
रोने के बाद सोचती हूँ
रोना भले ही अच्छा हो कभी - कभी
परन्तु ये मेरे आंखों को तो दुख देता है

मैं जी भर रोती हूँ
फिर रोने के बाद,
सोचती हूँ
रोना भले ही अच्छा हो
ये मेरे मन को दुख ही तो देता है

पता नही कब तक
मैं रोती रहूंगी
पता नहीं...

शायद एक दिन ऐसा आए
जब मेरे आंसू बाहर तो निकलें
मगर वो खुशी के आँसू हों
और सुख दें मन को...

ये आँसू भी कैसे हैं
सुख और दुख में
समान ही बहते हैं आँखों से
हम ही असामान्य हो जाते हैं
दुख और सुख में.....

प्रेम में हूं

प्रेम में हूँ
सोचती हूँ
जानना चाहती हूँ
उनके दिल की बात

एक ना एक दिन
कभी ना कभी
जान ही लूंगी उनके दिल की बात
काश! उनको भी उतना ही प्रेम हो हमसे
जितना हमको है उनसे

डर

ना जाने क्यो अब डर लगता है लोगों से,
डर लगता है लोगो से कुछ बोलने में

माँ मुझे समझती है
या नहीं
पता नहीं...

वो मेरे आँसू देख भी पायें या नहीं
वो मेरे प्रेम की कदर कर पाये या नहीं
डर लगता है लोगों से कुछ बोलने में
इतना डर है कि अब शायद ही मैं
किसी से कुछ बोल सकूँ
ना जाने क्यों अब डर लगता है लोगो से ...
****

अनुष्का पाण्डेय
छात्रा
काशी हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी

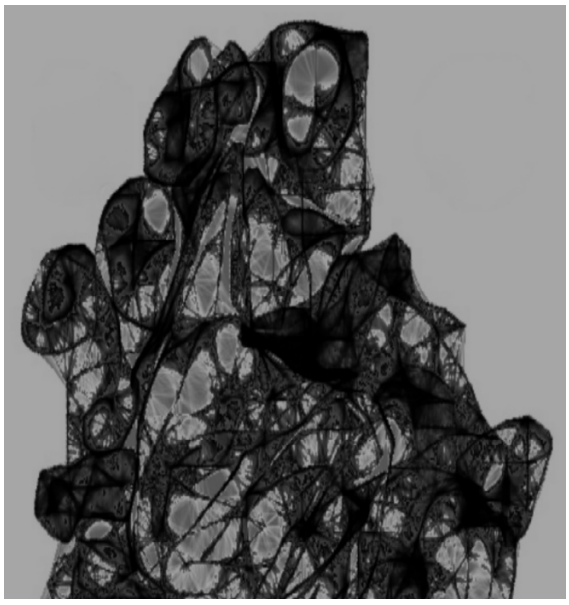

बहुत अधिक मामूली लोगों में जो महानता छिपी होती है, वह हम देख नहीं पाते - जोशना बैनर्जी आडवाणी की कविताएं

जोशना बैनर्जी आडवाणी की कविताएं कई कहे-अनकहे, सुने-अनसुने कथानकों को सिरजती हुई अपनी कहन के लिए एक अलग तरह का शिल्प गढ़ती हैं। अंचल विशेष की भाषा, तीज-त्यौहार, प्राकृतिक सौन्दर्य, रीति-नीति के नीड़ में लोक-जीवन के छोटे-छोटे स्वप्न-पाखियों के अनूठे स्वरों से भरी ये कविताएं, अपने आख्यान में भाषाई तौर पर लौकिक संस्कृत के वातावरण में अनायास ही पाठक को ले जाती हैं। **नौ दुग्गा** के रूपों की तरह ही ये कविताएं भी अपने विराट में संवेदनाओं के प्राक्ट्य से, लोक-जीवन की बहुविधियों और रूपों का साधारणीकरण करती हुई हमारे समकालीन इस संसार में विन्यस्त हो जाती हैं।

नकधिसनी प्रार्थनाएँ ...

जीवन के तुमुल में
किसी पुंडरीकाक्ष, किसी नटेश्वर के पास नहीं मिला
कारूण्य

किसी मनोहारिणी स्त्री के पास नहीं मिली कामख्या की शक्तियाँ
किसी पक्षी ने वृक्षों की पीड़ाओं के विषय में नहीं बताया
किसी रगड़ के पास नहीं थी पत्थरों की जीवनी
किसी अठोतरी में नहीं मिला एक सौ आठ तरीके के सुख

जीवन के तुमुल में
मिली मात्र नकघिसनी प्रार्थनाएँ।
***

निचला ओंठ अधिक चंचल है ...

उचक कर कोने से दाँत में पहले वही जा गड़ता है
जैसे एक रहस्य टिका हो उसपर
जैसे रहस्योद्घाटन से पहले की भंगिमा
जैसे प्रियतम की पहली पसंद हो वही
छुआ जाये तो उसी को पहले छुआ जाये
जैसे अधरामृत अमोघ
जैसे वृष्टि, मेघ, गर्जन से भी अधिक चपल
जैसे उपरी ओंठ हो अपंग और इसीपर हो दायित्व देखरेख का
जैसे ऋतुसंहार में कवि अपनी प्रिया को संबोधित कर रहा हो
जैसे चेहरे पर उभरे रहने के बावजूद निचले होने की दुआई दे रहा हो
नकारता हुआ इस सत्य को कि दोनों ओंठ समान
जैसे अपरिचय से जुड़ी कोई संवेदना
दंभ इतना जैसे ऊपरी ओंठ का भार उसी ने संभाल रखा हो
जैसे उसी पर टिका हो सौंदर्य सम्पूर्ण
जैसे दंतपंक्ति के सफेद पर लाल जवा
जैसे ऊपरी ओंठ की सभी ज़िम्मेदारी उसी पर हो
एकांत में मुस्कुराये तो खींच ले जाये उसे अपने साथ
जैसे अवसाद में खंडित नायिका का बिछोह गीत
जैसे विरह के अवशिष्ट दिनों में भी रमणीयता बनाये रखने की कला
जैसे देह के शासन के कार्यभार की सूची
जैसे आठ अध्यायों वाली अष्टाध्यायी
इतना चंचल जैसे
काम, क्रोध, मोह, माया, अहंकार
निचला ओंठ अधिक चंचल है

परंतु
कहो कोई इस निचले ओंठ से
मेरे प्रेयस ने इसे नहीं छुआ
छुआ मेरे माथे को पहले, फिर छुए मेरे नेत्र
इसे तो छुआ ही नहीं
***

अठोतरी ...

आठ सहेलियों में चर्चा का विषय था कि अश्रु बहकर कहाँ चले जाते हैं
पहली सबसे बड़ी उम्र की लड़की ने कह दिया नीलोत्पला में जाकर मिल जाते हैं
सहसा किसी ने पूछा अनुकांक्षाऐं जो पूरी नहीं होती वे कहाँ शरण पाती हैं
दूसरी लड़की जिसके पिता धमतरी में पत्थर काटते थे कह उठी सिहावा में जम जाते हैं
जब पूछा गया कि पीड़ा में भी मुड़ जाने की लचीली कला देह के किस अंग में हैं
गौना हुआ था जिस तीसरी लड़की का धीमें स्वर में बोली जाँघों में

हम सब ताकते रह गये उसे
चौथी लड़की जो कुम्हड़ा सिर पर रखकर चली आई
थी बोली जब बना चुकी होगी चूल्हे में अपनी देह
झोंककर तरकारी रोटी
खा लेंगे सभी
पर मेरी देह की गंध से स्नेह नहीं करेगा कोई
पाँचवीं लड़की की कामना थी कि वह ऐरावत की
सवारी करे
ऐसा कह देने भर से ही सब ने उसकी खूब खिल्ली
उड़ाई
अल्लम गल्लम बकते रहे सब
छठीं लड़की अंधी थी
माँ बाबा मर चुके थे
कहने लगी पता नहीं कौन उसकी छाती मसल देता
है जब तब
गंध से पहचानती है तो दादी डांटकर समझा देती है
चाचा के बारे ऐसा नहीं कहते पाप लगता है दण्ड
मिलेगा
उसकी आँखों में झोंक दिया गया था दण्डविधान
सातवीं लड़की को खूब पढ़ाई करनी थी
देश दुनिया घूमना चाहती थी
अजायबघरों पर किताब लिखना चाहती थी
एक घर खरीदेगी परिवार के लिए अच्छी नौकरी
लगने पर
अभी प्रतीक्षा में है
पिता ने कन्या छात्रवृत्ति योजना में फॉर्म भरा है
आठवीं लड़की सोच रही है उसे क्या कहना चाहिए
किस विषय पर बात करे
यकायक उठकर सबको गले से लगा लेती है
आठों सहेलियाँ खिलखिलाकर हँस देतीं हैं

आठ लड़कियों के आठ दुःख
आठ सौ लड़कियों के होंगे आठ सौ
और इस तरह जितनी लड़कियाँ उतने दुःख
किस अठोतरी में इतनी दिव्यता जो जप भर लेने से
मिट जाये इनकी पीड़ाऐं
आठ लड़कियों के लिए एक सौ आठ मनकों की
एक अठोतरी
निर्रथक है
निर्रथक है अठोतरी।

***(अठोतरी - एक सौ आठ मनकों की माला।)**
****

कु ...

कु नहीं है मन मेरा
इसने तो घपच्ची मारकर न दुःख पकड़ा न सुख
कठिन समय में कीका भी नहीं
आदर सूचक शब्दों का ही प्रयोग किया
बरगेल पक्षी को देखता है तो उसी के प्रेम में पड़
जाता है
रक्त देख लेता है तो कई दिनों तक नीले को भी
लाल देखता है, पीले को भी
लाल, काले, सफेद, हरे को
भी लाल ही देखता है
इसे कोई मतलब नहीं कि किस स्त्री से उत्पन्न हुए
ऐतरेय ऋषि
या नसीरुद्दीन शाह ने की कितनी पिक्चरें
कोई मतलब नहीं इसे कि कौन पी रहा है महुए की
शराब
या कहाँ दिए जा रहे हैं बेरोज़गार भत्ते
हाँ, अबक्का देवी और किन्नूर की चेनम्मा जैसी कुछ
औरतों
की जीवनियाँ पढ़ने ठहर जाता है

जलकुंभी के बगल में बैठकर देह का ताप उतार देता है
मौन रहता है हर किसी के सामक्ष
एक हल्के झंपन से भी उठ बैठता है
कीटिकाओं को देखता है, नहीं देखता फिल्में

कु नहीं है मन मेरा
ये तो तैमूर लंग भी नहीं जो चगेज़ खां बनना चाहता हो
ये तो गणित भी नहीं जो विज्ञान से उलझ रहा हो
पृथ्वी पर झरी हुई एक पत्ती में भी ढूँढ लेता है अपना आलय
किसी की खासी सुनकर भी व्याकुल हो उठता है
घायल बिल्ली को झाड़ियों से एहतियातन ऐसे घर उठा लाता है

दंडायमान् खड़ा रहता है तितलियों और गिलहरियों के बीच
उन्हें नहीं डराता
एक किताब जो गुम गई थी स्टेशन पर, उस किताब को याद करता है, कोसता है खुद को
आकाश से सटे हिमालय से बहुत कुछ कहना चाहता है
लाम्पोखरी झील के तट पर चाहता है अकेले रहना
चाहता है श्रृंगार प्रधान नाटकों में हिस्सा ले,
कबूतरों को उनके पूर्वजों की याद दिलाये जो पत्र लाया करते थे,

कु नहीं है मन मेरा
ये तो संसार के समाप्त होने पर भी नहीं रोयेगा
मछलियाँ पी जायें सारा पानी तो भी इसे कोई पीड़ा नहीं

सितार के तारों की तरह कस लेता है ख़ुद को
ख़ुद तपता है और सोचता है सौ लोगों को शीतल करे
प्रथम दण्डाधिकारी के नियम नहीं मानता

किसी के होंठ बिचकते हैं तो फिर नहीं लौटता उसके पास

कु नहीं है मन मेरा
एक धूलकण में भी खोज लेता है ईश्वर
वे, जो इसे बुरा समझते हैं, उनसे संधि वार्ता के लिए
कभी आगे नहीं आयेगा
इतना भर तो हठ है इसमें
परंतु कु नहीं है मन मेरा

***(कु- बुरा, एक उपसर्ग जो संज्ञा के पूर्व लगकर अनेक अर्थ देता है (जैसे—**
कुपुत्र, कुकर्म, कुधातु, कुदिन, कुबेला)
****

अच्छा हुआ उसे सत्यजीत रे ने नहीं देखा ...

पृथ्वी का हरा चूमता था उसकी गैंती को
वह उस हरे से लाल, पीले, सफेद पुष्प उगा लेती थी
उसके गीले केश की गंध रवींद्र संगीत जैसी थी

हल्दी के गाँठों के रंग उसकी हथेलियाँ पर जम गये थे
उसकी धवलिमा से घर में एक उजास थी
वह केश बाँधते हुए भी कर लेती थी कोयलों से कूँकने में प्रतियोगिता

वह आठ भाई बहनों में सबसे बड़ी थी
सबसे छोटी रह गई उसकी अनुकांक्षाऐं
उसकी रसोई में पंच फोरन की महक से भूख दुगनी हो उठती थी
जब शिशिर ढक लेता था हमारी छत
दोनों घुटनों में ऊन फँसाये वह गोले बनाती थी
आँगन में लेट जाती थी वह बांग्ला उपन्यास लिए
गिलहरियाँ देखती थी उसे एकटक
आँख लगने पर बिल्लियाँ शोर नहीं करती थी
उसे बर्फ पर जाना बेहद पसंद था
वह कभी नहीं जा पाई
बर्फ़ ने उसे कभी नहीं बुलाया
मैं आज तक बर्फ़ पर कविता नहीं लिख पाई
उसे चिठ्ठियों से नवजीवन मिलता था
अपने पिता की चिठ्ठी पाने पर खूब रोती थी
कौन करता है ऐसा भला
अनूठी, अनोखी थी वह
चिठ्ठियाँ रखने का एक कोना था उसका
मैं आज भी उस कोने में बैठकर उसका रुप धरती हूँ
उसका साँवला रंग संध्या बाती में बांग्ला फिल्मों की नायिका की तरह दमकता था
अच्छा हुआ उसे सत्यजीत रे ने नहीं देखा था
वरना तो वो अपना पूरा जीवन मुझपर कैसे वारती
उसकी सुंदर ऊँची नाक पर हीरा श्रद्धानत होकर बैठा रहा
जब तक वो रही
मुझे मसोस है मेरी नाक उसकी तरह क्यूँ नहीं
उसकी सभी साड़ियाँ और गहने मेरे पास है
मैं जतन से रखती हूँ
उसकी चादरों की बेलें उसकी कहानियों को पकड़ कर
आकाश चढ़ जाते थे
मैं हर रात उन्ही बेलों को पकड़ कर आकाश चढ़ती थी
उसने मुझे हर रोज़ काजल लगाया
आज काजल ही मेरा सबसे पसंदीदा आभूषण है
उसके गलतकिये में से केवड़े की गंध आती थी
वह गलतकिया आज भी मेरे पास है
वह मच्छरदानी लगाते हुए बांग्ला गीत गाती थी
कंठ के तार कसे हुए थे
वह माँ थी, मेरी माँ
शाम को जब बिजली विभाग से पिता आते थे
माँ छावनी बन जाती थी
घायल पिता सुस्ताते थे।

***

कौन रखेगा दु:ख पर चंदन ...

किस विधात्री के हाथों लिखा गया था भाग्य
किस नटेश्वर ने तय किया कि मृत्यु कब होगी
कौन सा दण्डविधान रचते रहे शनि
था कौन सा स्वर्ग वह
आखिर जना किसने ईश्वर को
विज्योल्लास को ताकता है मन
कितनी बड़ी तादात थी दु:खों की
बिछा दिए जाते तो आकाश तक पहुँच जाती सड़क
देश का राजा कहता है तीन चीज़े नक्की करो
तुम्हारा नाम
तुम्हारी पहचान
तुम्हारा वोट
घर का राजा कहता है घर, बच्चों और पैसों की हो अच्छे से देखभाल
कार्यस्थल का राजा कहता है ठीक से काम करो
मन का राजा कुछ नहीं कहता

बाकी के तीनों राजाओं ने इसका गला काट दिया है
मन का राजा एक मृतक है
अर्धमूर्छित अवस्था में पड़ी है जिह्वा
आवाज़ उठाने के लिए एक वैद्य को लाना होगा जो जिलाये रखे जिह्वा को

एक दुर्घटना की तरह सांसे ले लीं गई
कपड़े यह सोच कर पहने गये की किसी की आँखें शापित न हो
जूतों ने ख़ूब साथ निभाया
जो चुप्पियाँ साध ली हमनें
एकांत में उन चुप्पियों ने मस्तक उठाकर धिक्कारा

पृथ्वी ऊपर धान खड़ा था, पृथ्वी नीचे पानी
मन के ऊपर दैत्य समय का, मन के नीचे प्रेमी
कौन सा देवदूत हाथों में आशीर्वाद लिए आयेगा
तथास्तु कहने
कौन सी मोक्षदायिनी देवी हर लेगी विपत्तियाँ
किसी कुबेर को नहीं जानता मन
कौन आयेगा वृष्टि लेकर
कौन लायेगा संतुष्टि
कौन ही रखेगा दुःख पर चंदन
कोई नहीं, कोई नहीं, कोई नहीं
***

बेलूर मठ का भिक्षुक ...

चार बजे मांगल्यआरती के समय मुख्य द्वार
पर चरण पड़ते थे उसके
प्रथम भोग भगवान रामकृष्ण को चढ़ाकर
फिर अन्नभोग चढ़ाता था वह भिक्षुक
हाँ, भिक्षुक ही था
वहीं मठ में ही रहता था
दादा उसे दुलारते थे, उसे धोती कुर्ता छः मास में एक बार अवश्य ही देते थे।
वहाँ संध्या आरती का एक नियम था
आरती सूर्यास्त के बाईस मिनट के पश्चात ही होती थी
पूर्णिमा उत्सव में नाचता था वह भिक्षुक
उसका नाम होरि था
श्री हरि के रूप जैसा ही था उसका रूप
वहाँ ब्याहताएँ भी कहती किसी राजा का पाप है
अवश्य, जाने कैसे मठ तक आ पहुँचा है

नून भात ही खाता था एक वेला, दूसरी वेला अन्नभोग
कैसा बंगाली था, मछली नहीं खाता था
उसकी देह पर एक धोती और एक जनेऊ था मात्र
ब्रह्माण्डा मंदिर परिसर के किसी कोने में बैठता था
खाली समय में
कितनी वितृष्णा भरी थी उसमें
किसी चीज़ से नहीं चौंकता था
किसी वस्तु से कोई लालच नहीं

पर क्यों ही आखिर मैं उसे देखती थी
कन्याओं के स्वप्न में तो राजकुमार आया करते हैं, भिक्षुक नहीं
नहीं प्रेम जैसा कुछ भी नहीं था मेरे मन में
न ही कोई इच्छा उसके समीप पहुँच पाने की
जब जब उसे देखा दादा का हाथ पकड़कर ही देखा
उनके हाथों के बिना कभी न देखा
उसे कभी कुनमुनाते या क्रोधित होते नहीं देखा था
हम महान लोगों का गुणगान किया करते हैं

बहुत अधिक मामूली लोगों में जो महानता छिपी
होती है, वह हम देख नहीं पाते
खोज नहीं पाते विलक्षणता
पा नहीं पाते धीरता

बेलूर मठ का भिक्षुक आज भी मिलता है मठ में
जनेऊधारी भिक्षुक अब ढाक बजाता है
कालीबाड़ी से थोड़ा आगे चलकर जहाँ बिकती हैं
सब्ज़ियाँ, वहाँ से पुई शाग खरीदता हुआ मिल
जाता है
इस बार देखा तो एक बच्चे को बाँसुरी बजा के
सुना रहा था
दिमाग से नहीं, हृदय से काम लेता बेलूर मठ का
भिक्षुक,
एक भिक्षुक नहीं एक ओज है।
***

हावड़ा पुल नहीं, प्रेमी है ...

हावड़ा तुम्हें एक पुल की तरह दिखता है
अचम्भा है
मुझे तो दिखता है प्रेमी की आँख की तरह जो बस
मुझे ही देख रहा है निरंतर
हावड़ा की आँखें मुझसे नहीं हटती
ठीक वैसे ही जैसे देखो किसी की छवि
और वो लगता है तुम्हारी ओर ही देखता हुआ
चाहे किस भी दिशा में खड़े हो जाओ तुम
हावड़ा तुम्हें ही देखता हुआ मिलेगा
हुगली नदी के किनारे मास में चार इतवार खड़े हो
जाते थे हम बाप बेटी, हाथ में रोहू पकड़े

औलूक्य ढूँढ रही थी मैं, लोक्खी पूजा की रात
एक भी न दिखने पर
आलते रंगे पैर की कितनी तस्वीरें उतारी,
शुक्तो बना देती थी माँ हर चौथे दिन
स्वाद हर बार नया होता था
कितना ही नज़र रखती थी माँ मुझपर
भात का एक एक दाना जब तक न खत्म
होता, पंखा झलती
पिता हँसते
बिजली विभाग की नौकरी में एक मिनट को भी
बिजली नहीं कटती थी
फिर भी माँ पंखा झलती, पिता माँ पर हँसते

पड़ोस के बंदोपाध्याय काकू ने कितना कहा पिता
से
चलो सौल्ट लेक में कोई घर देखें
छोटा मोटा ही सही, नहीं तो बेहाला ठीक रहेगा
यहाँ बेलुर से निकल चलो
पद्म भरे पोखर को कैसे ही छोड़कर चली
जाती माँ
वह पलंग जो दहेज में लेकर आई थी माँ
इतना विशाल, सटे थे उसमें चार बाँस मच्छरदानी
के लिए, कितना भारी था
उसे एक जगह से दूसरी जगह ले जाने में कितने ही
फाँस निकल आते,
मन आहत होता
और वह गोल श्रृंगारदान, जिसमें विवाह के दूसरे
दिन से रोज़ दो बेला माँ सिंदूर भरती आई थी
अपनी माँग में,
वह श्रृंगारदान माँ की गंध को चिन्हता था
बांग्ला उपन्यास से भरा एक छोटा संदूक,
वह तो माँ का प्राण था
इतनी भारी भरकम चीज़े कैसे ठीक रख रखाव
से ले जाया सकता है

बेलुर छोड़कर माँ कहीं नहीं जायेगी

एक छोटा घर हावड़ा किनारे स्वप्न था मेरा
माँ बेलुर में ही मरना चाहती थी
दुग्गा से माँ कहती थी अपनी अंतिम इच्छा
हावड़ा मुझे चकित करता रहा
पिता दुग्गा और हावड़ा के मध्य अभी तुरंत निकाली
गई मछली की तरह फड़फड़ाते रहे।
***

बांकुड़ा की झिलमिली ...

प्रेयसियाँ भागी चली जा रही हैं नंगे पैर मध्यरात्रि
तलवे से रक्त छिटक कर दूर्बा को लाल रंग रहे हैं
कोई सुध नहीं कि तनिक वेग कम कर लें
वायुदेव से शत्रुता ले रही हैं प्रेयसियाँ
कपाल से बहता पसीना छाती से रिसता हुआ
नीचे टपक रहा है
इस प्रेमाग्नि के धधक में धूँ हो रहे हैं जाने
कितने ही मन

पथ कितना ही लम्बा है, पृथ्वी के पृथ्वी खा गया
यह पथ
महिषासुर बना है समय का अँधकार
रूँधे गले देवी तक नहीं जा रही पुकार
बांकुड़ा से होती हुई जा पहुँची हैं झिलमिली
प्रेयस सभी यहाँ हाथ में प्रतीक्षा लिए खड़े हैं

झिलमिली के घने जंगल में रास है आज
वनस्पतियों की यहाँ मेघमालाओं से संधि है
बड़े बड़े पात छाया देंगे
पान से ढाँपेंगी अपना चेहरा प्रेयसियाँ
कांगसावती नदी आज आशीर्वाद देगी प्रेमियों को
इस जल में निमज्जित हुए हैं प्रेमी सभी
इस जल से ही सिद्धि पायेंगे
पायेंगे बंगाल के इतिहास में अपना स्थान
जंगल में वन लताओं से प्रेमी बनायेंगे
शाका पौला अपनी संगिनी के लिए
सभी संगिनियाँ लाल पेरे साड़ी से ढाप लेंगी अपने
प्रेयस को
यहाँ स्नान करके वे लम्बी दूरी तय करके चल देंगे
बिश्नुपुर
सफर में दो मुठ्ठी मूड़ी से ही काम चला लेंगे
यहाँ चंद्रमा में नाचेंगी प्रियतमाएँ
प्रियतम सारे रंग बिरंगी कागज़ काटेंगे

बालूचेरी साड़ी खरीद कर प्रेमी
रख देंगे माता के पैरों में
माथा टेककर कह देंगे मन की बात
मोक्षदायिनी देवी के समक्ष लजायेंगे
माँग लेंगे वरदान
बांकुड़ा के झिलमिली में प्रेमी पूरी कर रहे हैं
अपनी शेष इच्छा।
***

बंग महिला राजेन्द्र बाला घोष के लिए ...

नीदरवासिनी और रामप्रसन्न घोष की
संतान बाला घोष कहो
कहो बाला घोष
तुम छापामार लेखिका क्यों कहलाईं
आखिर क्यों तुम बंग महिला के छद्मनाम
से लिखती रहीं
एक प्रतिष्ठित बंगाली परिवार में जन्मने
के बावजूद क्यों ही तुम कहलाई छापामार लेखिका
क्योंकि वे कुछ अहम् से भरे समीक्षक कैसे

ही तुम्हारा ओज सहते
बंगाल तुमपर गर्व है बाला घोष
तुम्हारा चारुबाला नाम मुझे अधिक भाता है
जो तुम्हें रानी कहकर पुकारा करते थे,
वे अवश्य ही तुम्हारा भविष्य जानते होंगे
कितना ही यश कमाया तुमनें
कितना ही सम्मान पाया
तुमने बंगाल के माथे पर गर्व तिलक लगाया
बाला घोष

बाला घोष
तुम प्रवासिनी के नाम से ही लिखती रहती
इतने नामों की क्या ही आवश्यकता एक बंगाली
स्त्री को
एक बंगाली स्त्री के रूप लावण्य, ओज और
हिम्मत से कोलकाता सृजित है
कोलकाता विश्वविद्यालय में वाईस चांसलर सोनाली
चक्रवर्ती बैनर्जी से सुना था एक बार कि तुम्हारी ही
बनाई कहानी लेखन की पृथ्वी पर प्रेमचंद बस गये
थे
किस तरह ही आखिर तुम छापामार कहलाई
चारूबाला
यह कितना सघन षड़यंत्र था

हे चारूबाला
पिता कहते थे रूढ़ियों का अंत किया तुमने
स्त्री शिक्षा को सर्वोपरि माना
बंगाल तुम्हें प्रणाम कहता है चारूबाला
वे पुरोधा समीक्षक कितने ही भयभीत रहे
होंगे तुमसे जिन्होंने तुम पर शब्दों से
कितना प्रहार किया
भयभीत मनुष्य ही स्त्री पुरूष में अंतर बताकर
स्वयं को श्रेष्ठ बताते
तुम्हें ओझल करने वाले आज स्वयं ओझल हैं
चारुबाला
तुम अजर अमर हुई चारूबाला

दुलाईवाला और चंद्रदेव से मेरी बातें
आज भी पिता के लकड़ी के अलमारी की शोभा है
कितना कुछ खोया तुमने चारुबाला
पति और बच्चों की मृत्यु ने तुम्हें तोड़ा
नहीं तोड़ सके तुम्हें चारित्रिक लांछन
उन समीक्षकों का नाम आज कहीं नहीं जिन्होंने
तुम्हें नकारा
आज तुम एक इतिहास हो चारूबाला, एक
आंदोलन, एक उदाहरण, एक प्रेरणा
बंगाल तुम्हें प्रणाम करता है चारुबाला।
***

तड़के का आकाश ...

एक गोश्त पकाती औरत और ठीक उससे तीन
प्रदेश दूर
सूतिकागार में पड़ी औरत की चिंताएँ एक सी हैं
उनके भय एक से हैं
एक ट्राम में बैठी औरत और नगर से दूर पहाड़ों पर
झरने में नहाती एक औरत गुनगुनाते हैं एक ही गीत
टूटी चप्पल में चलती एक औरत की कामनाएँ
कतई भिन्न नहीं
पियानो बजाने वाली एक औरत से
तीसरी लड़की जनने वाली एक औरत और एक
औरत जो दुर्घटना में खो चुकी है अपना एक
पाँव, दोनों की हँसी निश्छल ही रहेगी सदा
एक औरत जिसे प्रेमी ने दिया है धोखा अभी अभी,

उसकी योजनाएँ उस औरत से हुबहू मेल खाती
है, जिसकी लगी है अभी अभी एक नई नौकरी
एक समाचार सुनती औरत उतनी ही गंभीर
है, जितनी गंभीर
है एक ऐसी औरत जिसके बच्चे को अगवा कर
लिया गया है
बाईबल पढ़ती एक बूढ़ी औरत उतनी ही खूबसूरत
है , जितनी खूबसूरत लड़के वालों के सामने
रामायण बाँचती एक कुवाँरी लड़की

औरतें पुरूषों के लिए बना रही हैं रोटियाँ
कल्पना के प्रेमी के लिए गुनगुना रही हैं मीठा गीत
यह प्रेमी रसोईघर में अचानक प्रकट हो जाता है
पिट कर सोने वाली स्त्रियों के
गुसलखाने में कभी कभी आता है यह प्रेमी
चूमता है उसके घाव, उसे घंटों गले से लगाये रहता
है

पीड़ाएँ कितनी ही हैं जीवन में
इन पीड़ाओं की दृश्यावलियों में औरतें अदाकाराएँ
हैं,
जिन्हें पुरस्कृत किया जाना रह जायेगा
रह जायेगा उनकी मृत्यु का शोक
उन्हें प्रेम किया जाना रह जायेगा
उनकी स्मृतियों में जितने भी पुरूष हैं
उन पुरूषों का एक रहस्य रह जायेगा
अलिखित रह जायेंगी औरतों की मन की बातें
औरतें कह ही नहीं सकी हैं अबतक वह सब, जो
उन्हें
समय रहते कह देना चाहिए था
औरतें भावनाओं को छिपाने की देवियाँ हैं
औरतों के तड़के का आकाश अनूठा है
यह तड़के का आकाश ही उसका जीवन है

यह पृथ्वी एक दुशाला है
औरतें उस दुशाले की कुंज हैं
यही कुंज दिखाकर , दुशाले का व्यापार किया जाता
है।
***

परिचय:- जोशना बैनर्जी आडवानी आगरा के स्प्रिंगडेल मॉर्डन पब्लिक स्कूल में प्रधानाचार्य पद पर कार्यरत हैं।

अपनी समझ के संग्रहालय को खंगालते हुये- ऋतु डिमरी नौटियाल की कविताएं

ऋतु डिमरी नौटियाल की कविताएं आज के मनुष्य-जीवन और जीवन-शैली में घटित हो रहे प्रसंगों और प्रश्नों को स्पर्श करते हुए उनका सरल उत्तर देती अविरल-सी बहती प्रतीत होती हैं। अनुनाद पर यह उनका प्रथम प्रकाशन है, हम कवि का यहाँ स्वागत करते हैं।

जाल के साथ उड़ान

संध्या को प्रोमोशन रुक जाने का खतरा था
विद्या को दूसरे शहर में ट्रांसफर हो जाने का
मीता को पढ़ाई के लिए किया गया
छुट्टी का आवेदन निरस्त होने का खतरा
प्रीति को दूसरे डिपार्टमेंट में
भेज दिये जाने का खतरा

सभी समझ रही थी
एक दूसरे के अंतर्द्वंद
पर माया सिर्फ एक अकेला वजूद नहीं थी,
वो सब
कम से कम एक बार झेल चुकी थी
माया की तरह,
बौस के लिए
काम करती हुई अधीनस्थ औरत होने का
का अर्थ

जुट गयी सारी चिड़ियाँ
डालें हाथ में हाथ,
आकाश में उड़ने के लिए
जाल के साथ
***

प्रार्थना के क्षण

नास्तिक
बुदबुदा रहा है
सारे फूलों के नाम
उसने कभी तोड़ने की
सोची नहीं

आस्तिक
बुदबुदा रहा है मंत्र
किसी राग की कोशिश में,
जिसे सुन
काल
अपना रास्ता भटक जाये

बच्चा रो रहा है
मर रही माँ की छाती के पास
कि उसका रोना सुन

माँ की धड़कनें
अपने ही दूध की नदी से
भीतर प्राण के लिए
रास्ता बना ले

काल सुन रहा है
अजन्मे बच्चों, पौधों, जानवरों की भी
गुहार
"हमारे लिए जीवन में जगह बना दो "

इन प्रार्थनाओं के घट रहे क्षणों में
वो
बांच रहा है कहीं
जीवन - मृत्यु की बही
***

व्हट नेक्स्ट !!

बच्चे ने उठा लिया मोबाईल
पढ़ रहा है कुछ

जाने कितने बरसों तक
रट रहे थे
तोते हमारे भीतर,
सारी अदृश्य पंक्तियां
हमारे दिमाग की सतह में
नीली भाप की तरह जमी हैं

किसी अपार शक्ति ने
समझ लिया दीमकों का साम्राज्य

भेज दिया फरिश्ता गूगल,
दीमकों का अस्तित्व खतरे में है
तारीखें नहीं पूछी जा रही
प्रश्न-पत्रों में
ना ही पूछे जा रहे हैं
याद ना रह पाने वाले
मुश्किल नाम,
हमारे समझने को समझ रहे हैं
परीक्षक
अपनी समझ के संग्रहालय को
खंगालते हुये

उपजाऊ मिट्टी के कण
हमारे भीतर,
तय करेंगे
कहाँ है हमारी जगह
भविष्य में होने की

विकीपीडिया देख रहा बच्चा
माँ से पूछ रहा है
"व्हट नेक्स्ट ? "
***

गीले जूते

गीले जूते
मैं रख देता हूँ
दरवाजे के बाहर
आफिस से आते ही

मेरे पैरों को
घर के भीतर
रात की नींद में

सूखे पैरों के सपने चाहिए

पुलिस में काम करता
मेरा एक दोस्त
मेरी इस हरकत पे
हंसता है बहुत

उसके जूते और पैर
हमेशा गीले होते हैं,
उसके लिए
सारी सड़कें, सारे साल
पानी से भरी हैं
उसके शरीर ने गीले और सूखे का
अंतर करना कब का बंद कर दिया है

वो बता रहा था
हमारा एक डाक्टर दोस्त भी
  पानी से भरे अस्पताल में काम करता है
  उसका भी यही हाल है
  गीला और सूखा
  अब वो सूंघ नहीं पाता

सोच रहा हूँ
कब तक मेरे हिस्से में रहेंगे
घर के भीतर
नींद में
सूखे पैर लिए हुए
सपने
***

अंधेरे की खिड़की से झाँकते हुए

कितनी चकाचौंध रौशनी थी
मेरे घर में
घर के इर्दगिर्द,

नहीं झुक पाई आंखें
सड़क के गड्ढों को
देखने के लिये
जब आंखों के लिए
समां सारा
मेरे क़द से ऊंचा था

जब शोर
संगीत लग रहा था,
आडम्बर
एक धुन लग रही थी,
नहीं सुन पाया
शम्भू के बच्चों के
खाली पेट में
भूख से होती गुड़ गुड़
कूड़े में फेंक रहा था खाना
जो मोहल्ले के कुत्तों के लिए भी
इतना था
आधे से ज्यादा
  माहौल में गंध भरने के लिए
  बिना खाया छोड़ दिया

कहाँ सुन पाया विधवा चाची की बात
"बेटा !! कई महीनों से बिल नहीं जमा कराया
कट गयी है
घर की बिजली"

आज एक उंची इमारत पे खड़े

दो सांडों ने,
चकाचौंध को
उसकी औकात दिखा दी

आज देख पा रहा हूँ
अपने घर के अंधेरे की खिड़की से
शम्भू के घर से
गीली लकड़ियों से उठता धुंआ

चाची के घुटनों के दर्द की वजह से
बार बार उठती कराह
भी साफ साथ सुनाई दे रही है

साफ दिख रहे हैं
अपने- परायों के वो नम्बर
जो अब मेरा
फोन नहीं उठा रहे हैं,
मैसेज पढ़ नहीं रहे

देख पा रहा हूँ अब
सड़क के गड्ढों को
साफ साफ,
सुन पा रहा हूँ
घड़ी की अलार्म की आवाज,
जो कई दिनों
से मुझको
ठीक से सुनाई नहीं दी

***

लोकतंत्र के भीतर का निरंतर द्वन्द्व

कमाल है
वो हर परत का नाम
संख्याओं की नदी के बीच से
ढूँढ ढूँढ कर
पुकार रहे थे,

बता रहे थे कैसे
हर परत का नदी के बहाव के
भीतर रहना जरुरी है
तभी तो नदी
नदी रह पायेगी,
जब अपने अंगूठे की छाप से
हर परत
एक ही दिशा में जायेगी
कोई भंवर नहीं उगेगा
कोई मुश्किल नहीं आयेगी

बस वही तो सबसे बड़ी मुश्किल है,
हर परत को नदी के भीतर
तय करना जरूरी है
कौनसी दिशा की तरफ गटर है
और किस तरफ समन्दर

और कौन जाने
हर परत की एक ही दिशा चुनने के बाद
समन्दर और गटर की आपस में
जगह ही बदल जाये
***

बाय वन गैट वन

मैं भटक रहा हूँ
एक सड़क से दूसरी सड़क के बीच में
अपनी जेब में

नौकरी के आवेदन पत्र लिये

बेरोज़गारी के मौसम में
सामान्य श्रेणी का होना
हृदय पे सुई की तरह
चुभ रहा है

मेरी सामान्य श्रेणी
ढो रही है
मेरे पूर्वजों के द्वारा किये गये
सारे अन्यायों के
पश्चाताप

बहुसंख्यक होना
बचा गया मुझे हर दंगे से
जिंदा सही सलामत,
जबकि आततायी भीड़ के,
मैं कभी नहीं खड़ा था साथ

कसूर ना करते हुए भी
कितना ज्यादा कसूरवार हूँ मैं

और ट्रैफिक लाईट में
डस्टर के कपड़े हाथों में लिए
धीरे धीरे दौड़ रहा बच्चा
जोर जोर से बोल रहा है
"बाय वन गैट वन "
***

नाल-विमर्श

समय सबके लिए एक जैसा नहीं है

कहीं वर्तमान में
भविष्य के लिए;
जन्मे बच्चे की नाल संभाली जा रही है

कहीं ढूँढी जा रही है
फूड बिल की प्रतियां,
कब आई थीं
कैसे गायब हो गयी
कुछ पता नहीं

किसी किसी को अपनी माँ से जुड़ी नाल से
सिर्फ भूख की कोशिकाएं मिली हैं

गर शाहजहाँ के पास होता
ये नाल वाला समाधान
तो करता क्या वो चार बादशाह पैदा
जब मालूम था
तीन ने हर हाल में
मारे जाना है,
बचाकर रखता एक को
राजकाज के लिए
फिर चाहे वो बादशाह
सूफी होता
या नृशंस खूंखार

नाल के भीतर हम ही तो हैं
नदी के रूप में,
अपने वंशजों में
खुद को जिंदा रखते हुए

जाने क्या क्या संभालेगी
आने वाले वक्त में नाल

गति, समय, सृजनसरोकार
या कुछ और
***

खेत

"उन्हें"
अपने बीज से अन्न चाहिए था
पर स्थाई ज़िद के साथ
कि
"खेत" कोई और पैदा करे

सभी ने बीज के अंदर ही
खेत मार दिये
सभी को अपने लिए
सिर्फ अन्न चाहिए था

विज्ञान ने कहा
बीज के अंदर
खेत की भी भागीदारी है
उन्होंने मानने से इंकार कर दिया
"खेत"
"खेत" के गर्भ में मरते रहे

सुनने में आता है
'खेत' को मारने में
'खेत' ही हथियार बने

शून्य का द्वार खुल गया था
उसके भीतर कर रहे थे
'खेत'
प्रवेश

बीज!! आधे से,
जाने कब तक भ्रम में रहना चाहते हैं
"उनके अब तक के
अन्न के भीतर
उनकी अनंत पीढ़ियां
जिंदा हैं "
***

चेतना का चरम

उसने तोड़ दिये
सांचे
खिलौनों के सारे

वो ले आया चाक
घड़ा बनाने के लिए

डाल पे बैठा कौआ भी
जोड़ने लगा कंकड़,
घड़े और अपने बीच
पानी के रिश्ते के लिए

उस बार सिर्फ खिलौने बनाने वाले ने ही
ने नहीं बढ़ाया
घड़ा बनाने के अपने सपने की तरफ
पहला कदम

चम्पारण की मिट्टी ने भी
बढ़ाया,
नील की खेती की आदत से
भरे हुए खेतों में;

रस से भरे हुये अन्न के
खेत के
सपने की तरफ,
पहला कदम
***

बढ़ता ही जाता पृथ्वी पर भयावह सन्नाटा : मोहन कुमार डहेरिया की कविताएं

वरिष्ठ कवि मोहन कुमार डहेरिया नब्बे के दशक में प्रकाश में आयी कवि-पीढ़ी के महत्वपूर्ण प्रतिनिधि हैं। इनकी कविताएं समय, राजनीति और साहित्य के किसी भी प्रचलित मुहावरे से दूर कहीं जीवन की अभिधा से भरे साधारण मनुष्य जीवन के बीच से बोलती हैं, यही इनका मूल स्वर है। अनुनाद मोहन डहेरिया का स्वागत करते हुए इन कविताओं के लिए उनका आभार व्यक्त करता है।

ढहना मत

ढहना मत फागूलाल भाई
मैं एक दिन जरूर आऊंगा
बढ़ा हुआ है अभी मेरा ब्लडप्रेशर
कम नहीं हो रहा शुगर का लेवल

जानता हूँ बाज़ारों में मनिहारी समान
की दुकान लगाते लगाते
चूर चूर हो गए तुम्हारे घुटने

भर गई छेदों से बनियान
कांच की पिघली हुई गोली सी लगती हैं आंखें
पर ढहना मत
मैं एक दिन जरूर आऊंगा
अभी कमान पर तीर सा चढ़ा है मेरा इरादा
पक रही समय के छत्ते में करुणा

मैं जानता हूँ
जवान बेटे की मौत से नहीं उबरे हो तुम
अच्छी खासी ग्राहकी के दौरान
पड़ गया था तुम्हें मिर्गी का दौरा
बंध गई दंतकड़ी
तिरछा हो गया चेहरा ऐंठते ऐंठते
बमुश्किल पहुँचाया साथियों ने घर तक तुम्हारा गट्ठर
लेकिन फागूलाल भाई तुम ढहना मत
मैं एक दिन जरूर आऊँगा
अभी घास फूस के तिनकों से बुन रहा हूँ अपना साहस
बैसाखियों के सहारे चल रही मेरी आत्मा

मिल चुकी ख़बर
बार बार तुम्हारी तुम्हारी मुर्गियाँ खा जाता है नेवला
चक्कर काटते हो पंडित रमाकांत के कि
खोल दे मंत्रों से किसी साथी दुकानदार द्वारा बाँध दी गई
तुम्हारी दुकान
झल्लाकर लड़ पड़ते ग्राहकों से भी
एक दिन बिना बोहनी के लौटे थे जब तुम बाजार से
फ़ेंक दी घर लौटकर भगवान की फोटो
पीसने लगे
विक्षता में दाँत
परंतु फागूलाल भाई तुम ढहना मत
मैं एक दिन जरूर आऊंगा
अभी अजगर सा जकड़े हैं मेरे पैरों को मेरे बच्चों के खिलौने
दलदल सा फैला है रास्तों पर मेरी पत्नी की मांग का सिन्दूर।
***

छूटा हुआ प्रेम

क्या करना चाहिए छूटे हुए प्रेम के साथ

सौंप देना चाहिए किसी धर्मगुरु को
करेगा पर वह इसे लेकर ईश्वर से विकृत संवाद
गलती से छूट गई ट्रेन समझकर
भागते रहना चाहिए ताउम्र इसके पीछे - पीछे
छाती पीटते
ढोते रहें पीठ पर भारी बोझ सा
मनुष्य , मनुष्य नहीं हो जैसे मात्र हम्माल
या माने इसे बीते समय का कोई खंडहर
घूमते रहे दाँत पीसते हुए हमेशा जिसमें किसी मनोरोगी सा

क्या करना चाहिए छूटे हुए प्रेम के साथ
कैसा संबंध रखा जाए उसके साथ
पर्यटक ओर टूरिस्ट पाइंट , मरीज और डॉक्टर
या इजराइल और फिलिस्तीन वाला

टूटे हुए मुकुट सा धारण किया जाए सिर पर
और गर्व कि थोड़े समय के लिए ही सही
थे कभी राजकुमार प्रेम की किसी रियासत के

करते रहे उस पर हमेशा शिकायतों की गोली की बरसात
आमना - सामना होने पर चोर नजरों से देख कतराकर निकल जाना भी हो सकता है एक विकल्प
या हाथ मिलाकर उससे कर लें कोई कूट संधि
माना जा सकता उसे आत्मा के आसमान में
खिला इंद्रधनुष बरसाती भी
रही नहीं उम्र जिसकी किसी भी दौर में ज्यादा
यह भी हो सकता है
समझ लें उसे अकड़ गई रूई का कोई ढेर
धुना जाए जिसे खूब
समझी जाए गहरे धैर्य से रेशे दर रेशे उसकी जटिलता
बताई जाए लोगों को उसकी ठीक - ठीक तासीर

आखिर क्या करना चाहिए छूटे हुए प्रेम के साथ

दिसंबर की कड़कड़ाती सर्द रात है यह
निकल रही मेरे शरीर के रोम छिद्रों से कामनाओं की चिंगारियां
भभककर जलती कंठ में एक विराट पुकार की लौ
बताओ नई टेक्नोलॉजी के सर्वश्रेष्ठ जानकारों , ओ रोबोट भाई
क्या है आप लोगों के पास ऐसा कोई ऐप
डीलिट हो सके जिससे मनुष्य के जीवन से छूटा हुआ प्रेम ।
***

वह सिर्फ एक माँ

मत फुसफुसाओ कानों में लोगों
अभी वह सिर्फ एक माँ है

सामने है उसके बेटे की लाश
झर-झर बह रहे आँसू
मूर्छित हो जाती बार-बार
डूबने लगती नब्ज
मत थूको उसके रूदन पर लोगों
कि पकड़ी गई थी रात दो बजे प्रेमी संग
रहे बहुतों के साथ अवैध संबंध
मत कहो उसकी हिचकियों को धोखा
सिर पटकने को नाटक
देवी-देवताओं की फ़ोटो फेंकती
यमराज के सींगो से जूझती
अभी वह सिर्फ एक माँ है

व्यंग से देख उसे न हँसों लोगों
कि की उसने मोहल्ले में मारपीट कई बार
पकड़ी गई बेचते गैरकानूनी शराब
बार बार बंधती दन्तकड़ी
शून्य में स्थिर खँडहर सी आँखें
मरे हुए जवान बेटे को ब्लाउज खोल दूध पिलाना
कुछ भी झूठा नहीं है

आर-पार हो चुका है इस समय
उसकी आत्मा में धँसकर पुत्र की मौत का भाला
बुदबुदा रही वह
लौट बेटा लौट आ
घूमते रहना भले ही आवारा
नहीं कहूँगी काम-धंधा करने के लिए
फिर देने लगती हिस्ट्रीयाई अंदाज में
गाते हुए मोहल्ले वालों को आमंत्रण
कि आओ रे आओ

बजने लगे बैंड-बाजे
चली रे चली मेरे बेटे की बारात
नाचो रे नाचो

मत करो उसके चरित्र पर टीका-टिप्पणी लोगों
अभी वह सिर्फ एक माँ है।
***

भाषा के लिए

बहुत छोटी है मेरी बेटी
उससे छोटी उसकी दुनिया
हाथ भर होगी लंबी जिद
पानी के बुलबुले जैसा संताप

अभी
शिष्टाचार ने जर्जर नहीं की उसकी भाषा
उठता सपनों से उसके गाढ़ा झाग
सूत जितनी जगह घेरती महत्वकांक्षाएँ
प्रसन्नता का मतलब उसके लिए मुट्ठी भर चॉकलेट
या डुगडुगी की धुन पर मटक मटककर ससुराल
जाता बंदर

पिछले दिनों हुआ ऐसा फेरबदल
हथेलियों पर शतरंज सी बिछा ली कुछ लोगों ने
धरती
मोहरों की तरह करने लगे
नदियों , पेड़ों और पहाड़ों का इस्तेमाल
कि बढ़ता ही जाता पृथ्वी पर भयावह सन्नाटा
मैं नहीं जानता ऐसे माहौल में भी
कपड़े के भालू से , गुड़िया से , जोकर से
वह दिन दिन भर क्या क्या बतियाती है

पुकारती है जब बारीक आवाज में मुझे
पापा---पापा -- ए --- पापा-----
कसमसा उठता मेरे अंदर जैसे जल का सोता
लिए आशीष की मोटी धार

गर नहीं माना जाए इसे
वात्सल्य के सम्मोहन में डूबे एक पिता का मुगालता
तो पूछना चाहूँगा मैं
इन दिनों जब
विदेश यात्रा पर गए सर्वोच्च पद पर बैठे शासक हो
या चारा करने जंगल गए मवेशी
सुनिश्चित नहीं रही जब किसी की भी वापसी
क्या वह मेरी बेटी का विश्वास ही है
पकड़कर जिसकी नन्ही ऊँगली
लोगों के सारे षड्यंत्रों के अरण्यों को भेदता
लौट लौट आता हूँ मै फिर से अपने घर में ।
***

नई पहाड़े कॉलोनी, जवाहर
वार्ड, गुलाबरा, छिंदवाड़ा
जिला - छिंदवाड़ा (मप्र) 480001
फोन नं॰ - 8718903626(वाट्स अप), 6268539927
Email
– mohankumardeheria@gmail.com

समकालीन कविता में भारतबोध - दीक्षा मेहरा

भारत मात्र एक भू-खंड ही नहीं, अपितु समृद्ध वैचारिक परंपरा, विशाल सभ्यता, संस्कृति, जीवनमूल्यों, दर्शन एवं आध्यात्मिकता का समुच्चय है। भाषा, साहित्य, सभ्यता की दृष्टि से यह सबसे प्राचीन होने के साथ ही इसका गौरवशाली अतीत भी है। किन्तु पिछले कुछ वर्षों में हमारे देश में भारतबोध, देशप्रेम, राष्ट्रवाद जैसे कुछ शब्द अधिक प्रासंगिक हो गए हैं, लोग भी इन शब्दों की अलग-अलग दृष्टिकोण से व्याख्या कर रहे हैं, एक वर्ग इन शब्दों को बहुत संकुचित अर्थ में देख रहा है तो दूसरा वर्ग इसे विस्तार देने में जुटा हुआ है। 'भारतबोध' को संपूर्ण देश में हर स्तर पर नवीन दृष्टिकोण से परिभाषित किया जा रहा है। मेरा यह शोध भी 'भारतबोध' को पहचानने और उसे एक स्वस्थ दृष्टि से देखने की कोशिश भर है।

आरंभ से ही भारतीय चिंतन में समष्टि भाव की प्रधानता रही है। निराला 'तुलसीदास' नामक कविता में प्राचीन भारतीय संस्कृति के स्वर्णिम अतीत और आत्म-गौरव का बोध कराते हुए भारतीय संस्कृति के ह्रास की ओर संकेत करते हैं उनकी कविता सांस्कृतिक बोध के साथ-साथ मूल और आगन्तुक संस्कृतियों के बीच का संघर्ष भी दिखाती है-

भारत के नभ के प्रभापूर्य
शीतलाच्छाय सांस्कृतिक सूर्य,
अस्तमित आज रे-तमस्तूर्य दिंमण्डल,
उर के आसन पर शिरस्त्राण[1]

भारतीय संस्कृति की उदारता तथा समन्यवयादी गुणों ने ही अन्य संस्कृतियों को भी समाहित किया है, इसकी विशेषता आर्य, द्रविड़, कोल, किरात और फिर शक, हूण, यूनानी, कुषाण कि समासिक मिली-जुली संस्कृति में दिखाई देती है। बाहर से आने वाले अरबों, तुर्कों, और मुगलों के माध्यम से यहाँ इस्लामिक संस्कृति का आगमन हुआ और वह भी यहाँ की संस्कृति में घुल-मिल गए। ठीक यही स्थिति यूरोपीय जातियों के आने तथा ब्रिटिश साम्राज्य के कारण भारत में विकसित हुई ईसाई संस्कृति पर भी लागू होती है। **'भारत तीर्थ'** कविता में रवींद्रनाथ कहते हैं-

आर्य, अनार्य, द्रविड़, चीनी, शक, हूण, पठान, मुग ल सब यहाँ एक देह में लीन हो गए। यह देह ही भारतबोध है। इसी के साथ विगत कुछ वर्षों से भारतीय संस्कृति के ह्रास और वर्तमान भारत का यथार्थ और संघर्ष भी भारतबोध है-

****

ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि
एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं-
तेरह के तेरह अभागे-
अकिंचन मनुपुत्र
ज़िदा झोंक दिए गए हों
प्रचंड अग्नि की विकराल लपटों में
साधन संपन्न ऊँची जातियों वाले
सौ-सौ मनुपुत्रों द्वारा![2]

'भारतबोध' एक विशाल अवधारणा है जब हम भारत के अतीत से सीखते हुए, वर्तमान में केन्द्रित

हो, भविष्य की ओर देखते हैं तो यह भारतबोध कहलाता है। इसे निश्चित परिभाषा में बाँध पाना कठिन है। बोध से अभिप्राय एक अनुभूतिपूर्ण समझ से है। भारत के संदर्भ में अनुभूत तथ्य, हजारों-हजार साल की सभ्यता एवं संस्कृति की श्रेष्ठता पर जब हम गर्व करते हैं, उसे आत्मसात करते हैं और रचनात्मक रूप में अपनाते हैं तो यह भारतबोध है। वास्तव में यदि हमें भारत को जानना है तो बार-बार पीछे मुड़ कर देखना होगा। कृष्ण कल्पित हिन्दनामा में लिखते हैं-

भारत एक खोया हुआ देश है
सबको अपना- अपना
भारत खोजना पड़ता है
मैं भी इस भू-भाग पर भटकता हुआ
अपना भारत खोज रहा हूँ![3]

भारत में लेखकों, साहित्यकारों एवं इतिहासकारों का एक ऐसा वर्ग भी रहा है, जिसने भारतीय समाज को भ्रमित करने और भारत को हिन्दू राष्ट्र के रूप में देखने तथा 'भारतबोध' से दूर ले जाने का प्रयास किया है। कई बार भारत को पश्चिम की दृष्टि से भी देखने का प्रयास किया गया जिसके परिणामस्वरूप भारतीय समाज का मूल स्वरूप विकृत हो गलत दिशा में आगे बढ़ने लगा। किन्तु अनेक राजनीतिक एवं सांस्कृतिक आक्रमणों के बाद भी भारत अपनी पहचान के साथ आज भी खड़ा है। भारतीयता को लेकर जो नकारात्मकता फैली हुई है उसे दूर करने का प्रयास भारतीयता से ओतप्रोत समकालीन कवि कर रहे हैं-

हम हिन्दू नहीं थे
उन्होंने हमें हिन्दू कहा
जन्म भूमि ही हमारा धर्म है
इस महादेश में अन्न और शब्दों की कभी कमी नहीं रही
इस महादेश में कामक्रीड़ा भी एक तरह का यज्ञ थी
और यज्ञ एक तरह की काम क्रीड़ा
कारागार, वनवास और देश निकाला
प्राचीन सजाएं थी
अपने जन-समाज देश से विलग करने का दंड
अंग-भंग, मृत्यु दंड और दीवार में चुनवा देने की सजाएं
हमनें कुछ अधिक सभ्य होने के बाद ईजाद की
कुछ मरकर भी जीवित थे
कुछ जीते जी मर गए
कुछ को पुरस्कार देकर मार डाला गया.....
इस महादेश में कविता लिखना
जीवन मरण का प्रश्न था[4]

आरंभ से ही भारत एक लोकतांत्रिक राष्ट्र के रूप में स्थापित था। मौर्य शासनकाल इसका उदाहरण है। हिमालय से हिन्द महासागर तक का संपूर्ण भारतवर्ष में राजनीतिक एकता थी। राष्ट्र 16 महाजनपदों- अवन्ति, अश्मक, अंग, कम्बोज, काशी, कुरू, कोश ल, गांधार, चेदि, वज्जि, वत्स, पांचाल, मगध, म त्स्य, मल्ल, शूरसेन में विभाजित था। इस विशाल साम्राज्य के महत्वपूर्ण निर्णय आपसी सहमति से लिए जाते थे। उत्तरापद में स्थित तक्षशिला, नालंदा, पल्लवी और विक्रमशीला भारतीय विधाओं के बड़े केन्द्र थे। प्राचीनकाल से ही विभिन्न भाषाओं, बोलियों, संस्कृतियों की साझी विरासत के साथ भारत का राष्ट्र के रूप अस्तित्व बनाए रखना संपूर्ण विश्व के लिए अनुकरणीय है। आज भी 'हम भारत के लोग' हमारे संविधान की

प्रस्तावना का पहला ध्येय वाक्य है। **हम, भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए..... एतद द्वारा इस संविधान को अंगीकृत करते हैं।** [5] भारतीय संविधान में वर्णित प्रावधानों का पालन कहाँ तक हो रहा है वह जग-जाहिर है। समकालीन कवि अपनी रचनाओं में इन विडम्बनापूर्ण स्थितियों का चित्रण करते हैं-

मेरे लोग शब्दों की तरह मेरी भाषा में आते हैं
हताशा, अवसाद और क्रोध से भरे
मेरे शब्द लोगों की तरह मेरी भाषा से बाहर जाते हैं
मेरे भीतरी भूकम्प, बेचैनी और दु:खों की तरह
एक तथाकथित सुखमय
प्रमुदित संसार में
बिना लज्जित हुए
बिना डरे[6]

देश कभी भी भौगोलिक सीमाओं से नहीं बनता, वह बनता है लोगों से, जन चेतना, जन संस्कारों और जन आकांक्षाओं से। सांस्कृतिक-राजनैतिक चेतना से संपन्न जनता ही अपने देश प्रति प्रेम, सम्मान, त्याग, प्रगति का भाव रखती है।

ग्राम, नगर या कुछ लोगों का नाम नहीं होता है देश
संसद, सड़कों, आयोगों का नाम नहीं होता है देश
देश नहीं होता है केवल सीमाओं से घिरा मकान
देश नहीं होता कोई सजी हुई ऊंची दूकान
देश नहीं क्लब, जिसमें बैठे करते रहे सदा हम मौज
देश नहीं केवल बंदूकें, देश नहीं होता है फ़ौज
जहाँ प्रेम के दीपक जलते, वही हुआ करता है देश
जहाँ इरादे नहीं बदलते, वही हुआ करता है देश[7]

स्वाधीन भारत का सपना था सरकार सेवक बनकर जनता की सेवा करे लेकिन व्यवस्था ने जनता के साथ इसके विपरीत व्यवहार किया है। धूमिल की कविताएं स्वाधीनता के सपनों के मोहभंग की पीड़ा और आक्रोश को सशक्त अभिव्यक्ति देती है-

क्या आजादी
सिर्फ़ तीन थके हुए
रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है?[8]

भारत का स्वाधीनता संग्राम भी केवल राजनीतिक स्वतंत्रता आंदोलन नहीं था। इसमें अस्पृश्यता का विरोध, जातिवाद एवं समाजिक कुरीतियों का विरोध, सामुदायिक स्वच्छता, आर्थिक स्वालंबन, जमींदारी का विरोध, शिक्षा सुधार, महिला सशक्तिकरण, अहिंसा आदि मुद्दों पर जन समर्थन और जन जागरण का अह्वाहन था। किन्तु आज हम इन जन आकांक्षाओं को दरकिनार कर धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक रूप से विभाजित होते जा रहे हैं भारत की आर्थिक संरचना भी लक्ष्यों के अनुकूल नहीं है। समकालीन कविता इन जन आकांक्षाओं एवं विभाजनकारी प्रवृत्तियों पर वैचारिक विमर्श कर भारतबोध को आगे बढ़ा रही है।

धिक्कार है
इस आजादी को
जहाँ बहुत बड़ी आबादी को
मिलता सुख और चैन नहीं
दिन में काम
आराम
सारी रैन नहीं
यहाँ
भूखा बचपन पालिश करता[9]

देश की अंधिकांश जनसंख्या गरीबी-रेखा के नीचे है, मजदूरों का शोषण, किसानों का संघर्ष देश की स्वतंत्रता पर प्रश्न चिह्न लगाता है। रघुवीर सहाय 'राष्ट्रगीत' नामक कविता में लिखते हैं-

राष्ट्रगीत में भला कौन वह
भारत-भाग्य-विधाता है
फटा सुथन्ना पहने जिसका
गुन हरचरना गाता है
.
पूरब-पश्चिम से आते हैं
नंगे-बूचे नरकंकाल
.
कौन-कौन है वह जन-गण-मन
अधिनायक वह महाबली
डरा हुआ मन बेमन जिसका
बाजा रोज बजाता है।[10]

हमें भारत की सर्व धर्म सम्भाव वाली सनातन सभ्यता को आत्मसात करना होगा। भारतीय सभ्यता ऐसी विशिष्ट सभ्यता है जिसका आधार विवेक सम्मत ज्ञान और तर्क प्रणाली है। किन्तु साम्राज्यवादी, मजहबी आक्रमणों ने भारतीय वैचारिक-संवेदनात्मक दृष्टि को क्षत-विक्षत किया है। इस वैचारिक विमर्श का उद्देश्य भारतबोध को सही मायने में जनता के सामने रखना है। क्योंकि भारतीय संस्कृति का आधार तो 'वसुधैव कुटुंबकम' है जो मानवता की भावना का विस्तार दिखाता है। भारत में शंकराचार्य से लेकर विवेकानंद तक दार्शनिक समाज सुधारकों की लंबी श्रृंखला रही है जिन्होंने राजनीतिक और आर्थिक चुनौतियों में भी भारतीय समाज को आध्यात्मिक पुनर्जागरण और समाजिक सौहार्द के लिए प्रेरित किया। शंकराचार्य की वह भारत दृष्टि ही थी कि उन्होंने चारों दिशाओं में अपने मठ स्थापित किए। पूर्व में गोवर्धन मठ, पश्चिम में शारदा मठ, उत्तर में ज्योतिर्मठ और दक्षिण में श्रृंगेरी मठ। ये मठ भारत की एकता के भी परिचायक चिह्न है। भारतीय वर्ण व्यवस्था को यदि तर्कपूर्ण दृष्टि से देखे तो वर्ण व्यवस्था का आधार कदापि जन्म नहीं था वरन यह योग्यता, क्षमता और अभिरूचि पर आधारित था। ज्ञान को समाज में सर्वोच्च माना गया दूसरा स्थान सुरक्षा को तीसरा स्थान समृद्धि और चौथा स्थान शारीरिक कौशलों को दिया गया। किन्तु आज 21 वीं सदी के वैज्ञानिक युग में भी जाति और वर्ण के नाम पर समाज में अराजकता और अमानुषिकता फैली हुई है और समकालीन कविता लगातार इन विसंगतियों की ओर समाज का ध्यान केन्द्रित कर रही है। ओमप्रकाश वाल्मीकि 'ठाकुर का कुआँ' में जातिगत भेदभाव की त्रासदी को इस प्रकार चित्रित करते हैं-

चूल्हा मिट्टी का
मिट्टी तालाब की
तालाब ठाकुर का।

भूख रोटी की
रोटी बाजरे की
बाजरा खेत का
खेत ठाकुर का।

बैल ठाकुर के
हल ठाकुर का
हल की मूठ पर हथेली अपनी।

फसल ठाकुर की
कुआँ ठाकुर का
खेत-खलिहान ठाकुर के
गली-मुहल्ले ठाकुर के
फिर अपना क्या?

गाँव?
देश? ..... ।[11]

समकालीन कवियों ने भारतबोध को अत्यंत सशक्तता से अभिव्यक्त किया है समकालीन कविता पैने व्यंग्य के माध्यम से लगातार समाज को दर्पण दिखाने का कार्य कर रही है।

निर्धन जनता का शोषण है
कहकर आप हँसे
लोकतंत्र का अंतिम क्षण है
कहकर आप हँसे
सब के सब हैं भ्रष्टाचारी
कहकर आप हँसे
चारों ओर बड़ी लाचारी कहकर आप हँसे
कितने आप सुरक्षित होंगे
मैं सोचने लगा
सहसा मुझे अकेला पाकर
फिर से आप हँसे[12]

समकालीन कवि समाज के प्रति प्रतिबद्ध है। अत्याचार, हताशा, जड़ता, निराशा में भी वह आशा की खोज करता है।

जितना बचा हूँ
उससे भी बचाए रख सकता हूँ यह अभिमान
कि अगर नाक हूँ
तो वहां तक हूँ जहां तक हवा
मिट्टी की महक को
हलकोरकर बांधती
फूलों की सूक्तियों में
और फिर खोल देती
सुगंधी के न जाने कितने अर्थों को
हजारों मुक्तिओं में।[13]

वस्तुत: समकालीन समाज भारत को उस दृष्टि से नहीं देख रहा है जो उसकी मूल दृष्टि है। वह भारत को विदेशी दार्शनिकों की समझ से समझने का का प्रयास कर रहा है। किन्तु भारतीय संस्कृति के कई ऐसे पहलू हैं, जिन्हें भारतीय होकर ही जाना जा सकता है। हमारी संस्कृति प्राचीन काल से ही विशिष्ट रही है, इस देश में जो भी आया वह यहीं का होकर रह गया। अत: भारतबोध भारतीय मूल्यों एवं परंपराओं को पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर देखने का प्रयास है। आज आवश्यकता है भारत के स्वर्णिम अतीत, समाज, संस्कृति, इतिहास एवं जीवन पद्धति को सही दृष्टि से समाज के सम्मुख रखने की। जिससे भारतीय चिंतन द्वंद्वात्मक न होकर सत्य और तर्क पर आधारित हो। भारतीय समाज अपनी जड़ो को

पहचानते हुए उसे आत्मसात कर रचनात्मक रूप से आगे बढ़े।

संदर्भ:-
1. निराला सूर्यकान्त त्रिपाठी, तुलसीदास, hindi-kavita.com
2. नागार्जुन, हरिजनगाथा, hindwi.org
3. कल्पित कृष्ण, हिन्दनामा : एक महादेश की गाथा, पोस्ट राजकमल प्रकाशन समूह
4. कल्पित कृष्ण, हिन्दनामा : एक महादेश की गाथा, पोस्ट परिदृश्य हिन्दी किताब मुंबई
5. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3-1-1977) "राष्ट्र की एकता" के स्थान पर प्रतिस्थापित।
6. शिरीष कुमार मौर्य की कविताएं, 2017, samalochan.blogspot.com
7. गर्ग शेर जंग, सर्वप्रिय, अगस्त, 1985, पृ. 15
8. धूमिल, बीस साल बाद, kavitakosh.org
9. सुधाकर जगदीश, कुंदलशील, अप्रैल 1984, पृ.9
10. रघूवीर सहाय , राष्ट्रगीत, kavitakosh.org
11. बाल्मीकि ओमप्रकाश, सदियों का संताप, पृष्ठ-3
12. सहाय रघुवीर, हंसो हंसो जल्दी हंसो, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 112
13. श्रीवास्तव परमानन्द, शब्द और मनुष्य, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-30

बतखोर आंखों के आगे - वीरेन्द्र दुबे की कविताएँ

वीरेन्द्र दुबे देश के जाने माने बालशिक्षा विशेषज्ञों में हैं। इस क्षेत्र में उनकी उम्र गुज़री है। मध्य प्रदेश से उत्तराखंड तक विस्तृत उनके कार्यक्षेत्र में लोग उन्हें प्यार और सम्मान से याद करते हैं। उनकी कविताएँ जैसे उतनी ही सहज भावभूमि पर ठहर जाती हैं, जितना सहज एक बालमन होता है। बेहद सरल भाषा और बिम्बों की इस बतकही का अनुनाद पर स्वागत है।

एक

रजाई में दुबके वार वार
मुंह निकालकर सोचते ,
कबसे ना नींद थी ना सपने
ना कोई लोरी
अब सपनों से
खचाखच भरी नींद में

तुम मौजूद हो ,
जब आंख खोलो
तो सामने तुम होती हो
और
खिड़की खोलो तो हिमालय ।।

दो

बात बात में
उचट जाने वाला चित्त ना जाने तुमसे इतना हिल गया है
क्या पता
उसे ऐसा क्या मिल गया है ?
हंसती हो हंसकर रह जाती हो
तुम्हारे हंसने बोलने में जादू भरा है ।।

तीन

तुम्हारी आंखें
बारीक घास से बुने घौंसले हैं
जिनमें चिड़ियें तो चिड़ियें ,
आसमान तक सिर छिपाने की फिराक में रहता है ,
बतखोरू आंखों के आगे
किसकी कब कहां चली
आंखें ही बोल बतिया रही हैं ,
शब्द चुपचाप हाथ बांधे खड़े हैं ।।

चार

मेरे लिए तुम्हारा साथ
खाली स्थानों का भराव नहीं है
इसमें जलशाली नदियें
हिचकोले लेती हैं ,
तुममें सुनहरी रेशों वाली
धूप छांव में पली बढ़ी
कल्पवृक्ष की गहरी जड़ें हैं ,
काली गर्भवती हरिणी
उसके तने से पीठ खुजला रही है ,
माहुरी लगे नाखूनों से
धरती खुरच रही है ।।

पांच

चटख हरे रहे तिनके
उन दिनों के लिए
घौंसले बुन रहे हैं ,
जब चिलचिलाते घाम तपेंगे
जब झमाझम बरसात होगी
बर्फ पड़ रही होगी ,
अबकी कोई नई डिजाइन डालेंगे ,
शहतूत की पत्तियां चलते कीड़े
अपनी कोख में मन ही मन
तुम्हारे दुपट्टे का रेशम पोस रहे हैं ।।

छह

अभी तो
जहां तक हाथ पहुंचे
वहां के बादलों की बात करलें ,
फिर कल चलेंगे
चुनौती देती चोटियों की तरफ ,
आसमान जितनी लंबी चौड़ी
रातों की गहरी नींद में
बुदबुद करती उबासियां जहां

ठिठुरती आग से खेलती हैं ,
पहाड़ पर बर्फ पड़ती है
और मैदान को कपकपी लगती है ।।

सात

घोड़े हिनहिना रहे हैं
हाथी चिंघाड़ रहे हैं
शेर दहाड़ रहे हैं
ऊंट बलबला रहे हैं
कुत्ते भौंक रहे हैं
मेंढ़क टर्रा रहे हैं
कोयल कूक रही है
तुम नाहक मुंह फुलाए बैठी हो ?

आठ

सुबह सुबह
मंडवा कुट्टू कौणी झिंगोरा
सबके स्वाद सबकी महक
एकाएक समा गयी नथुनों में
तब दिन भर पड़े ही नहीं
धरती पर पांव
बादलों में ही रहा मन ,
फ्योंली बुरांश हिलांश
भागीरथी टिहरी
इसके उसके नाम चेहरे
गूंजते झूलते रहे सस्वर
उत्सव हो गया तुम्हारा स्मरण ।।

नौ

तुम्हारे साथ जाना
तुम का ताप आप से
कितना कितना अधिक है ,
तुम भी कितना
आदरणीय शब्द है शब्दकोश में ,
छू सकते हैं , लिपट सकते हैं
चूम सकते हैं ,
तुम्हारे दिए कितने अधिकार हैं
दुःख में सुख में सहने सराहने के
कहने कराहने के निभने निभाने के ,
कामयाब नुस्खों से देखते देखते
फूलों की घाटी बना डाला
ऊसर सन्नाटों को ,
यह सब तुम्हारे लोकतंत्र में ही संभव था ।।

दस

तुम तो सब मंजरियों की सिरमौर हो ,
अब तुम छोटी मोटी किस्सा कहानी थोड़े ही रह
गयी हो
इतनी बात तो
हर पेड़ जानता है ,
वैसे भी आजकल
जिस पेड़ की बगल से गुजरो
वही एक दरख्वास्त थमा देता है ।।

गहन निराशा भी ताकतवर होती है - कुमार अम्बुज के संग्रह 'उपशीर्षक' पर दयाशंकर शरण

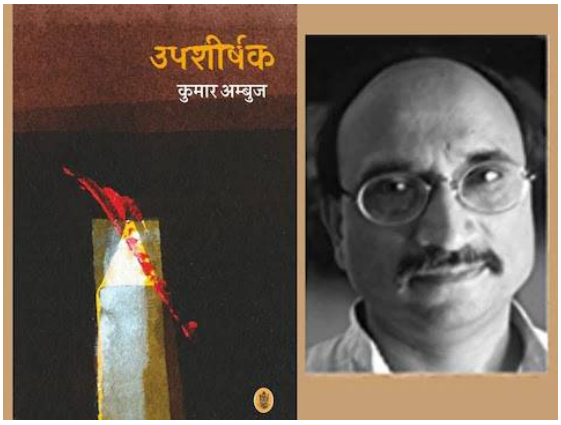

सभ्यता के इस दौर की अमानवीयता को जिस तल्खी से वर्तमान समय की कविताओं में अभिव्यक्ति मिल रही है, वह कई मायनों में अपने पूर्ववर्ती दौर की कविताओं से भिन्न है। उनकी काव्य-भाषा का शिल्प बनावटी शब्दों से अधिक अब जीवन के अनुभूत सत्यों से रचा-बसा है। उनमें जीवन की धडकनें स्पष्ट सुनाई पड़ती हैं। उनमें यथार्थ का रंग पहले से कहीं ज्यादा खुरदरा और बदरंग है। आज की कविता का चेहरा अपेक्षाकृत कहीं अधिक कुरूप एवं भयावह है। किसी समय कविता की मान्य परिभाषा विक्टोरिया युग के प्रख्यात आलोचक रहे-मैथ्यू आर्नल्ड, की यह थी कि वह **जीवन की आलोचना है।** पर आज जिस सभ्यता के मुहाने पर हम खड़े हैं, वहाँ से देखने पर यह परिभाषा कुछ अधूरी एवं एकांगी लगती है। सिर्फ आलोचना कह देने भर से बात नहीं बनती। पहली बात यह कि अंतर्विरोधों से भरे आज के जीवन का यथार्थ इतना संश्लिष्ट एवं जटिल है कि उसे कई-कई कोणों एवं अंतरों से परखे बिना किसी निष्कर्ष तक पहुँचने में प्रायः सरलीकरण का भी खतरा है। दूसरी बात यह कि यह दौर आत्यंतिक रूप से आदर्शवाद एवं नैतिक मूल्यों के क्षरण का है। अब सारे मूल्य एवं आदर्श खोखले हो चुके हैं। अत्यंत वीभत्स, विरोधाभासी, विकृत,पाखण्डी एवं निर्मम हो चुका है आज का यथार्थ। इसके पास अब कई मुखौटे हैं जिन्हें वह अपनी सुविधा-असुविधा से लगाते-उतारते रहता है। वह गिरगिटों की तरह रंग बदलते रह सकता है। ऐसे में यथार्थ के पोशीदा चेहरे को बेनकाब करती इस दौर की कविताएँ हीं अपने आत्मसंघर्ष की ताकत से दीर्घ काल तक टिक सकती हैं। कुमार अंबुज के सद्य प्रकाशित काव्य संग्रह-**'उपशीर्षक'**, को पढ़ते हुए बतौर पाठक एक अलग किस्म की अनुभव-यात्रा से गुजरना पड़ता है। इन कविताओं में प्रेम की सघनता और संवेदना की विरल अनुभूति तो है ही, इसके अलावे यहाँ प्रेम का फैलाव भी सीधे उर्ध्व एवं एकरैखिक न होकर क्षैतिज एवं बहुआयामी है। साथ ही संवेदना के धरातल पर वह निरा व्यक्तिगत न होकर समष्टिगत है। कवि का दुःख किसी एक का नहीं बल्कि हर एक का है। इसलिए इस संग्रह की प्रायः सभी कविताओं में संवेदना का विस्तार पहले से कहीं अधिक सघन दिखाई देता है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि पूर्व के संग्रह में यह सघनता कमतर है। फ़र्क सिर्फ इतना है कि उम्र के साथ जैसे अनुभव में एक परिपक्वता सी आ जाती है, वैसे ही काव्य-यात्रा में भी कई महत्वपूर्ण पड़ाव तय कर लेने के बाद हमारी संवेदना का आकाश भी अधिक व्यापक और असीम होता जाता है। कविता का वेवलेंथ एवं अंडरटोन हाई पिच से लो पिच में बदलता जाता है। शब्दों की वाचालता एवं फिजूल खर्ची धीरे-धीरे रूकती जाती है। कहने की जरूरत

नहीं है कि यह समय शब्दों की गरिमा के ह्रास का समय है।इन दिनों शब्द बहुत तेजी से अपनी शक्ति एवं अर्थवत्ता खो रहे हैं।सबसे अधिक दुरूपयोग इन दिनों शब्दों के साथ ही हो रहा है। बहुत अच्छे-अच्छे ऊर्जावान शब्द अब घिस-घिसकर अर्थहीन हो चुके हैं। ऐसे में संग्रह की ये कविताएँ उमस भरे मौसम में एक ताज़ा हवा के झोंके की तरह महसूस होती हैं। गौरतलब है कि इन कविताओं में पहले की तरह वैचारिक मताग्रह अब उतना लाउड नहीं है। यहाँ कविता की भाषा एवं उसकी सोच उदार एवं सर्वसमावेशी है। यहाँ सामाजिक प्रतिबद्धता तो है पर विचारधारात्मक हठ या कट्टरता नहीं है। यहाँ तक कि पहले जिन शब्दों को वर्जित समझा जाता था और मार्क्सवादी दृष्टि से एक तरह से अछूत (मसलन- पुनर्जन्म,नियति जैसे कई शब्द) उन्हें भले ही अभिधा में न सही पर अब व्यंजना और मुहावरे में नि:संकोच लिया जा रहा है। वस्तुतः किसी भी भाषा के शब्द कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः संकीर्ण नहीं होते। यह एक दृष्टिदोष है, ठीक वैसे ही जैसे अश्लीलता हमारी आँखों में है।

इस संग्रह की कविताएँ मुख्यतः दो ध्रुवांतों पर खड़ी दिखती हैं। एक तरफ राजनीतिक एवं सामाजिक चेतना से लैश तो दूसरी तरफ मानवीय संबंधों एवं सरोकारों की वाहक कविताएँ। लेकिन सूक्ष्म रूप से देखा जाय तो हर कविता जो व्यक्तिगत है, वह राजनीतिक भी है। जब मानवीय मूल्यों के पतन का कारण आर्थिक एवं राजनीतिक है, तो जाहिर सी बात है कि जीवन पर इसका प्रभाव भी चौतरफ़ा है। इन दोनों के मध्य कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। इनमें एक अन्योन्याश्रय संबंध है। मानवीय रिश्तों की गरमाहट अब कहीं अगर महसूस नहीं होती तो इसके पीछे कौन से कारक हैं? अनिवार्य रूप से इसके आर्थिक एवं राजनीतिक कारण भी हैं। किसे नहीं पता कि अर्थव्यवस्था राजनीति से नियंत्रित है। साहित्य में इन दिनों प्रेम कविताएँ भी कम होती जा रही हैं। उन कारणों की पड़ताल ज़रूरी है। साहित्य के समाजशास्त्र में डुबकी लगाये बिना सत्य को खोज पाना कठिन है। सत्ता और साहित्य के अंतर्संबंधों एवं उनके अंतर्विरोधों को पहचाने बिना साहित्य लेखन निरा काल्पनिक, उपदेशात्मक एवं आदर्शवादी ही हो सकता है। उससे यथार्थवाद की उम्मीद और अपेक्षा रखना बेमानी है। लेकिन प्रेम कविताओं का लिखा जाना भी उतना ही ज़रूरी है। कम से कम एक ऐसे समय और समाज में जहाँ प्रेम पर चौतरफ़ा हमले हो रहे हों, प्रतिवाद करती प्रेम कविताएँ भी राजनीतिक कविताएँ हो जाती हैं।

इस तथ्य को भी नकारा नहीं जा सकता कि हर काल में अपने समय से बहुत आगे की कविताएँ भी लिखी जाती रही हैं। वैसे ही बहुत पीछे की भी। अतीतोन्मुखी या बहुत पुराने ढर्रे की अतीतजीवी कविताएँ भी यदा-कदा पत्र-पत्रिकाओं में आये दिन दिख जाती हैं। प्राचीन रूढ़ मूल्यों की वाहक ये यथास्थितिवादी (अल्पजीवी) कविताएँ घोर प्रतिक्रियावादी तेवर लिए हो सकती हैं। जबकि सनातन सत्य यही है कि काल का पहिया कभी पीछे नहीं लौटता। अपने समय से आगे की कविताएँ ही कालजयी हो सकती हैं। उनकी उम्र लंबी चिरस्थायी होती है और यह तभी संभव है जब उसमें व्यक्त यथार्थ और अनुभूत सत्य अपने समय के रक्त-मांस-मज्जा में गहरे धंसे हों। प्रथम विश्वयुद्ध के एक अल्पजीवी (25 वर्ष) अंग्रेज युवा सैनिक कवि

विल्फ्रेड ओवन (मृत्यु1918) की कविता की चंद पंक्तियाँ दिमाग से कभी ओझल नहीं होतीं-

रंगे हुए अधरों में वह लाली कहाँ जो उन धब्बेदार पत्थरों में है
जिन्हें मरते हुए सिपाही ने चूमा था।

युद्ध की पूरी अमानवीयता एवं निर्दयता को एक गहरी जुगुप्सा से कविता इन दो पंक्तियों में व्यक्त करती है। यह कविता आज भी उतनी ही समकालीन है। इस संग्रह की भी कुछ कविताएँ अलग-अलग संदर्भों में मन पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाती हैं। इन कविताओं का यथार्थ भी अपने समय के आइनें में इतना कुरूप एवं भयावह है कि पढ़ते हुए हमें एकबारगी अवाक एवं स्तब्ध रह जाना पड़ता है।

कोई भागता है तो पीछे से लग जाती है गोली
खड़ा रहता है सामने तो माथे पर हो जाता है सूराख़।

सरकारी मौत एक अंधविश्वास है,शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ पूरे सरकारी तंत्र की साज़िशों का पर्दाफाश कर देती हैं। उनके मुँह पर यह कविता एक करारा तमाचा है। सत्तातंत्र के लिए अब नागरिकता भी एक संवैधानिक हथियार है मनुष्य जाति को उनकी जड़ों से विस्थापन का। समाज के ही एक अंग को गैर-ज़रूरी मानकर काट फेंकने का। कविता की एक पंक्ति है-

यह तकलीफ़ लोकतंत्र से नहीं
उसके अपेंडिक्स से हो सकती है।
इस तंत्र में आदमी तो आदमी, लाश का भी पता नहीं चलता।

****

बाकी अंग बरामद नहीं हुए
लेकिन वे मेरे पिता ही थे जो मारे गये
यह उनके एक पाँव के जूते से तय हुआ ।

लोकतंत्र के इस प्रहसन में एक भी असली चेहरा कहीं नहीं दिखता। सभी कुशल अभिनेता हैं। 'धरती का विलाप' कविता से

सारे पात्र अभिनय करने की कोशिश कर रहे हैं
केवल घटनाएँ हैं जो बिना अभिनय के घट रही हैं।

आगे की पंक्तियाँ हैं-

अचानक पति का साथ छूटता है तो याद आता है बेटा बचा है
जब बेटा छूटता है तो याद आता है पति पहले ही छूट चुका है।

तंत्र जब तानाशाही में बदलती है तो सबसे पहला शिकार बुद्धिजीवी ही होता है। कविता की एक पंक्ति है-

बुद्धिजीवियों को डाल दिया है स्टोन-क्रशर में।

किसी भी समाज को रीढ़विहीन करने के लिए बुद्धिजीवियों की ज़ुबान बंद करनी पड़ती है। पहला कदम होता है अभिव्यक्ति की आजादी पर पाबंदी। दुष्यंत का एक शेर है-

तेरा निज़ाम है सिल दे ज़ुबान शायर की
मैं बेकरार हूँ आवाज़ में असर के लिए।

पर बात इतने से ही खत्म नहीं होती, यातना के अनुभवों से गुजरते हुए कविता विस्थापन की त्रासदी को भी महसूस करती चलती है जो इन दिनों मनुष्यों की नियति बन चुकी है। कभी नागरिकता के नाम पर, कभी नस्ल या रंगभेद तो कभी महामारी के बहाने। कविता की पंक्तियाँ हैं-

जैसे वस्तुओ को, जानवरों को नहीं पता होता
कि वे कहाँ के लिए ले जाये जाते हैं
इन लोगों को भी नहीं पता।

दरअसल, हम एक ऐसे अराजक दौर के साक्षी हैं जहाँ कोई चीज़ अपनी जगह पर साबुत नहीं बची है। मिलावट एवं गिरावट का कोई पारावार नहीं, कोई ओर-छोर नहीं। 'जिम्मेदारी' कविता व्यवस्था के लिए एक श्वेतपत्र-सी है –

न्यायालय फैसला करते हैं न्याय की जवाबदेही नहीं लेते
जैसे पुलिस सुरक्षा की और वन विभाग जंगल की
स्वास्थ्य विभाग स्वास्थ्य की
कारख़ाने कामगारों की और बच्चे माँ-बाप की।

हमारे दौर की एक और बड़ी त्रासदी है- मनुष्य में आस्था का संकट। इसके ही अन्य कई सह-उत्पाद भी हैं जिन्हें हम कई रूपों में देखते हैं। मसलन,मानवीय संवेदना एवं मूल्यों में क्षरण, आत्म-निर्वासन, अवसाद, सामाजिक नैतिकता का घोर पतन वगैरह वगैरह। एक कविता की पंक्तियाँ हैं-

यह हमारे समय का हासिल है
कि जैसे ही देखते हैं कोई दूसरा मनुष्य
तो सहज ही करने लगते हैं उस पर अविश्वास।

कविता आगे कहती है-

विनम्रता सबसे पुराना अभिनय है
सबसे पुराना आविष्कार।

इसे पढ़ते ही कुमार अंम्बुज की एक पुरानी कविता याद आ गई, जिसकी पंक्तियाँ हैं-

उससे डरता हूँ जो अत्यंत विनम्र है
कोई भी घटना जिसे क्रोधित नहीं करती
जो बात बात में ईश्वर को याद करता है
बहुत डरता हूँ अति-धार्मिक आदमी से
जो मारा जाएगा अगली सदी की बर्बरता में
उसे प्यार करना चाहता हूँ।

इससे इस विचार की पुष्टि भी होती है कि कोई लेखक अपने जीवन में बस एक ही कविता या कहानी लिखता है और बाद में उसी एक कथ्य की अलग-अलग भंगिमाओ में पुनरावृत्ति करते जाता है। वैसे यह निष्कर्ष भी अर्धसत्य है और एक किस्म का सरलीकरण है। अपनी सृजनात्मक यात्रा में कई पड़ावों से गुजरती कविता उस अपराधबोध को भी महसूस करती है जिसके लिए कोई न कोई उत्तरदायी है

याद करो तुमने उसकी थाली में वर्षों तक कितना कम खाना दिया
याद करो तुमने घर में उसे उतनी जगह भी नहीं दी
जितनी तिलचट्टे, चूहे, छिपकलियाँ या कुत्ते घेर लेते हैं।

गौरतलब है कि अपने अंतर्द्वंद्व एवं अंतर्विरोधों से सतत वाद-विवाद -संवाद करती आज की कविता नये-नये सत्यों का अनुसंधान करती जाती है। आत्मसंघर्ष की इस प्रक्रिया में वह अपने और अपनों पर भी संदेह करती है। कविता की पंक्तियाँ हैं-

शायद इनके बारे में ऐसा सोचना ठीक नहीं
लेकिन मुझे हर एक पर शक है यह मेरी बीमारी है
और एक अपराधी विजयी हुआ है यह समाज की बीमारी है
जरा सोचे, हममें से हर दूसरा आदमी अपराधियों का वोटर है।

कविता उन्हें भी नहीं बख्श पाती जो उसके तथाकथित अपने हैं और उसके साथ खड़े हैं। कविता अंत में इस नतीजे पर पहुंचती है कि गलत चीज़ें अक्सर पवित्र किस्म की अश्लीलताओं से शुरू होती है। इससे इस वस्तुगत सत्य की पुष्टि भी होती है कि हर विकास अपने भीतर विनाश का बीज भी लिए रहता है।

सामाजिकता से इतर संग्रह की अनेक कविताएँ मनुष्य के निजी सुख-दुःख एवं नितांत व्यक्तिगत भावभूमि पर भी खड़ी दिखाई पड़ती हैं जहाँ संबंधों की गरमाहट अब छीजती महसूस होती है। अभाव से स्वभाव बदल जाता है और पेट की भूख आदमी को हैवान बना देती है। रिश्तों की जमीनों में अब इतनी दरारें पड़ चुकी हैं और हमारी संवेदना इतनी कुंद पड़ चुकी है कि हमें सिर्फ़ अपना ही स्वार्थ दिखाई देता है। दुष्यंत का एक शेर याद आता है-

कुछ बहुत गहरी दरारें पड़ गयीं मन में
मीत अब ये मन नहीं धरती है।

इस संग्रह में कविता की एक पंक्ति है-

बेटी को हम विदा करते हैं
बेटा बिना विदा किए ही घर से चला जाता है।

पुश्तैनी मकानों में ताले जड़ें जा चुके हैं। सब लोग बिखर गए हैं असंभव अक्षांशों देशांतरों में..बिल्डर उन्हें हड़पने को आतुर हैं। अब कोई ऐसा घर नहीं जो किसी की प्रतीक्षा में हो। हर अंतिम संस्कार में किसी वजह से(जो सब समझते हैं) कोई बेटा शामिल नहीं होता। संग्रह की एक बहुत अच्छी कविता है- 'एक सर्द शाम' से-

यह कुछ इस तरह होता है
कि अंदाज़ा नहीं लग पाता
एक दिन इस कदर अकेले रह जायेंगे।

मगर अंत में यह मानते हुए कि गहन निराशा भी ताकतवर होती है,हमें उम्मीदों का दामन थामे रखना है -

यह भी एक आशा है
कि चारों तरफ बढ़ती जा रही है निराशा।

वैसे कविता की वर्तमान मति-गति या दशा और दिशा पर विचार करते हुए एक बात बेतरह खटकती है कि वह आजकल अपनी जमीन एवं परंपरा से असंपृक्त होकर किसी और आबोहवा से पोषित क्यों है ? इसे आम तौर से भारतीय साहित्य एवं खास तौर से हिन्दी साहित्य के संदर्भ में एक सांस्कृतिक संकट के रूप में

भी देखा जा सकता है। बेहतर यही है कि हम अपनी जड़ों को अपनी ही मिट्टी में फैलने पसरने दें। अपनी परंपरा से अर्जित जीवन-रस ही अंततः काम आता है। बाकी सब सूखकर काल कवलित हो जाता है। इसलिए यह एक सांस्कृतिक सवाल भी बनता है कि हमारा साहित्य अपनी जातीय परंपरा में कितनी गहराई तक धंसा है ? हम अपने सृजन का प्रारंभ (प्रस्थान बिंदु) अपनी ही परंपरा के महान कवियों के उद्धरणों से क्यों न करें? क्या हमारी साहित्यिक विरासत एवं परंपरा इतनी दरिद्र है? इस संग्रह की कविताओं में कोई एक उद्धरण एवं संदर्भ भी अपनी परंपरा से नहीं है, यह बात थोड़ी खटकती है।

***

- दया शंकर शरण

मोबाइल-9430480879

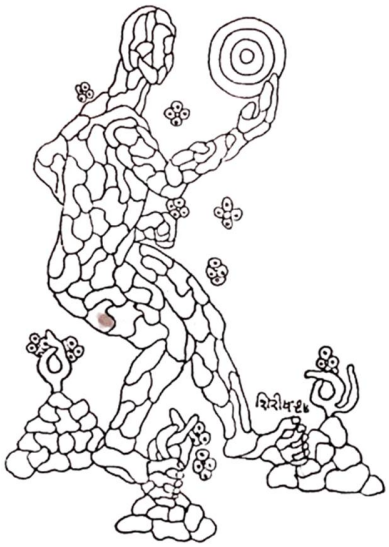

एडम ज़गायेव्स्की की तीन कविताएँ : अंग्रेज़ी से अनुवाद - अंजलि नैलवाल

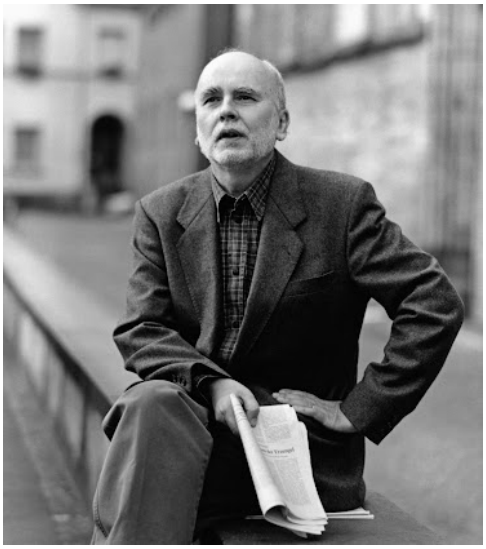

एक पियानोवादक की मृत्यु

दूसरे जब जंग छेड़ रहे थे
अथवा कर रहे थे अनुनय अमन के लिये, या जब
पड़े हुए थे दवाख़ानों व छावनियों की
तंग शय्या पर, कई-कई दिनों तक

तब उसने किया अभ्यास बीथोवेन की धुनों का
और तुच्छ, छरहरी उंगलियों से
ऐसी महान निधि को छुआ
जो उसकी थी भी नहीं।

***

विद्वानों का कमरा

अतिथि विद्वानों के कमरे में होती है एक अलमारी

दर्जन भर उबाऊ उपन्यासों से भरी अलग-अलग भाषाओं में
जो आपके ख़ानदान में कोई नहीं बोलता, एक निद्राग्रस्त बुद्ध,
एक मौन टेलीविजन, एक टूटा-पुराना तवा जिसपर शनिवार की रात को तली गयी अंडे की भुर्जी के बचे हुए दाग निराश कर देने वाले हैं।

एक धूसर रंग की केतली जो हर बोली में बस सीटी ही बजा पाती है।
आप ख़ुद को इसमें ढालने का प्रयास करते हुए कभी-कभी सोच में भी पड़ जाते हैं।
आप पढ़ते हैं माइस्टर एखहार्ट को दूरी और अलगाव के बारे में
एक फ्रांसपरस्त अंग्रेज़ की कविताओं को और
एक अंग्रेज़परस्त फ्रांसीसी के गद्य को।

और इन सुथरे बसेरों में बसने की आदत के लिए
कई दिनों के संघर्ष के बाद,
इस मोहतरम मानव जाति के सराय पर ठहरने के बाद,
आपको विस्मय से भरा एहसास होता है कि
यहाँ तो कोई रहता ही नहीं,
पृथ्वी पर कोई जीवन ही नहीं।
***

आहिस्ता बोलो

आहिस्ते बोलो! तुम्हारी उम्र जो इतने लंबे समय से चली आ रही थी, अब उससे अधिक है,
तुम स्वयं से भी बड़े हो
और अब तक यह नहीं जान पाये कि
वियोग, काव्य और सम्पत्ति के क्या मायने हैं।

कभी गलियों को बहा ले जाता गन्दला पानी; कभी त्वरित आँधी
झकझोर देती है इस उदासीन, सुस्त शहर को।
रुख़सत होती हुई हर एक आँधी, छोड़ जाती है हमारे ऊपर मंडराते फ़ोटोग्राफ़रों को,
जो हमारे भय और संत्रास को एक चमक दिखाकर क़ैद करते रहते हैं।

क्या तुम जानते हो क्या होता है क्रंदन, इतनी विकराल हताशा
जो हृदय की लय का गला घोंट दे और आगामी समय का भी।
तुम रोए होगे अजनबियों के बीच , एक आधुनिक दुकान में
जहाँ छल से बटोरे जाते हैं सिक्के।

तुमने देखा होगा वेनिस और सिएना, और तस्वीरों में उदास तरुण युवतियों को, जो चाहती हैं
जश्न में सड़कों पर नाचना किसी आम लड़की की तरह।

तुमने छोटे शहर भी देखें हों शायद, कुछ खास सुंदर नहीं,
वहाँ के बूढ़े लोग भी, पीड़ा और समय की मार से थके हुए।
फिर भी आँखे ऐसी, मूर्ति के बीचोंबीच जगमगाती,
धूप में झुलसे हुए साधक-सी आँखे, जंगली जानवर की सी चमकती आँखे।

तुमने ला गैलेयर के समुद्र तट से सूखे कंकड़ उठाये
और अचानक तुम उनके शौकीन हो गए
-- उनके और पतले चीड़ के पत्तों के,
औरवहाँ पर बाकी हर किसी के, और उस समंदर के
जो इतना शक्तिशाली है, फिर भी कितना अकेला--
-
जैसे कि मानो हम सब यतीम हों
एक ही घर से, बिछड़े हों हित के लिए
और वर्तमान के इस विषादपूर्ण कारागार में
क्षणिक मुलाक़ातों के लिए अनुमत हों।

आहिस्ते बोलो: तुम अब युवा नहीं रहे,
हफ़्तों के उपवास के साथ हुए ज्ञान से शांति अवश्य होनी चाहिए,
तुम्हें चुनना चाहिए, आत्मसमर्पण करना चाहिए, समय के लिए रुकना चाहिए,

थाम कर रखनी चाहिए लम्बी बातें रूखे-सूखे मुल्कों के दूतों से
और फटे हुए होठों के साथ, तुम्हें इंतजार करना चाहिए,
पत्र लिखने चाहिए, पाँच सौ पृष्ठों की किताब पढ़नी चाहिए।
आहिस्ते बोलो। कविता की उम्मीद मत छोड़ो।
***

03 अप्रैल 2003 में जन्मी अंजलि नैलवाल को अनुवादक के रूप में जानना सुखद आश्चर्य से भरा एक प्रसंग है। अल्मोड़ा जिले के एक दूरस्थ और कठिन इलाक़े सल्ट में उनका छोटा-सा गांव है। रामनगर-बद्रीनाथ मार्ग पर भतरौजखान नामक एक छोटा-सा बाज़ार है, वहाँ स्थित सरकारी इंटर कालेज से इंटर करने के बाद अंजलि हिन्दी, अंग्रेज़ी और इतिहास विषयों के साथ राजकीय महाविद्यालय रामनगर से बी.ए. कर रही हैं। कुछ दिन पूर्व अनुवाद-कर्म और प्रक्रिया पर युवा आलोचक सुबोध शुक्ल और मैंने अंजलि से बात की, वे आजकल काफ़्का को पढ़ रही हैं और उनकी डायरी का अनुवाद भी। वे साहित्य की गम्भीर अध्येता है। अनुवाद को पुनर्रचना मानती हैं।

जब भी कोई स्थायी पता पूछता है - ललन चतुर्वेदी की कविताएँ

कविता लेखन पर निजी जीवन और अनुभवों का विशेष प्रभाव होता है, जब यही अनुभव लोक मानस से जुड़ जाते हैं, तब सार्वजनिक होकर सभी जनों की आवाज़ बन जाते हैं। ललन चतुर्वेदी की कविताएं इन्हीं निजी जीवनानुभवों का सामाजिक दस्तावेज़ प्रस्तुत करती हैं। अनुनाद पर यह उनका प्रथम प्रकाशन है। कवि का यहाँ स्वागत है।

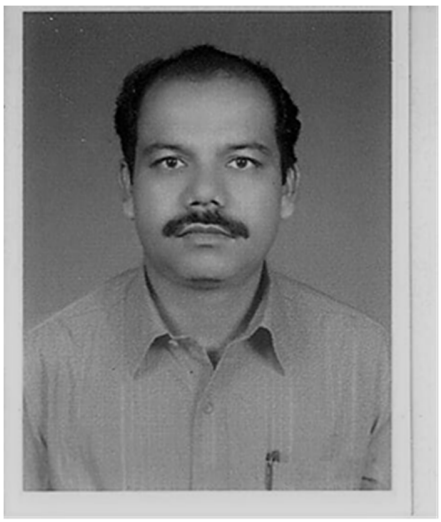

स्थाई पता

पता नहीं
किस द्वीप से आए होंगे पूर्वज !
पिछले ही कुछ वर्षों में
चार राज्यों के चौदह शहरों में
अपने ठिकाने बदले
कहां जन्मभूमि? कहां कर्मभूमि?
और अब तो नौकरी भी कच्ची !

गनीमत कि पिंजड़े में नहीं हूं
कभी इस डाल पर,कभी उस पात पर
चिड़िये की तरह फुदकता - फुदकता
कभी चला जाऊंगा जम्बूद्वीप से
कहां, कुछ भी नहीं मालूम !

जब भी कोई स्थायी पता पूछता है
मैं मुस्कुरा देता हूं।
***

अंतिम को अनन्तिम नहीं समझा जाए

बात जब भी की जाए, अंतिम बात की जाए
जब भी मिला जाए, अंतिम बार मिला जाए
'फिर मिलेंगे'- यह उम्मीद भरा एक अधूरा वाक्य है

मैं कल की बात नहीं करना चाहता
मैं हर पल की बात करना चाहता हूं
अंतिम का अर्थ अंत नहीं होता-
यह तो पूर्ण होना है
जीने का मज़ा तब है जब
अंतिम को अनन्तिम नहीं समझा जाए।
***

पेड़ मातृभाषा समझता है

वह मां के सतत स्पर्श की आकांक्षा में
धरती की अतल गहराइयों में उतरता जाता है
उतरता ही जाता है

वह मां को धूप - आतप से बचाने के शुभ संकल्प में
अंबर को घेर लेना चाहता है
वह जीवन-रक्षा के लिए जो कुछ ग्रहण करता है
उसे भी लौटा देता है प्राण - वायु के रूप में
पूरे जीवनकाल वह अपनी जन्म-धरती से हिलता नहीं है

उसे किसी से कोई उम्मीद नहीं
और किसी से कोई शिक़ायत भी नहीं
वह जीता है निर्विकार तपस्वी का जीवन
समस्त जगत में कोई नहीं स्वार्थ से परे
मगर एक वही है जो नि:स्वार्थ जीता है
कभी फूल,कभी फल की भेंट देता रहता है अनवरत
शीर्ष पर, टहनियों पर देता है जीवों को आश्रय

जब लगभग प्रत्येक व्यक्ति के जीवन से
विलुप्त होती जा रही है मातृभाषा
वह पेड़ ही है जो मौन भाव से सुनता है, समझता है मातृभाषा
जन्मता है जिस मां की कोख से
उसी मां की गोद में सदा - सदा के लिए सो जाता है
***

इच्छा -मृत्यु

टुकड़ों में जीता है
टुकड़े - टुकड़े होकर
टुकुर -टुकुर देखता है
जब लोग बोलते हैं
चुपचाप सुनता है
केवल मुंह देखता है
पता नहीं कि वह दिन काटता है
या दिन ही उसे आरी की तरह काटता है
न कुछ खाने,न कुछ खोने,न कुछ पाने
न कुछ बोलने,न कुछ बतियाने
न कहीं आने,न कहीं जाने
कुछ देखने की इच्छा भी शेष नहीं
इस तरह आदमी मृत्यु को जीता है
कौन कहता है कि अपनी इच्छा से मरना इच्छा-मृत्यु है
इच्छाओं का मर जाना ही इच्छा-मृत्यु है ।
***

दु:ख का पहाड़ा

मास्टर साहब !
दु:ख का जोड़ होता है
दु:ख का गुणा होता है
मगर दु:ख का घटाव नहीं होता
और भाग तो कतई संभव नहीं
हां, दु:ख के पहाड़े जरुर होते हैं
आदमी दुख के पहरे में
पढ़ता रहता है दुख का पहाड़ा
मास्टर साहब!
कब भेजोगे अगले क्लास में
बताओ न!
कब तक हम पढ़ें दु:ख के पहाड़े ?
***

चुप्पी शोर मचाती है

आदमी
सहते-सहते
बोलने लगता है

आदमी
सुनते- सुनते
बोलने लगता है

सुनने - सहने की क्षमता
जब समाप्त हो जाती है
तब आदमी की आंखें पथरा जाती हैं
और उसकी चुप्पी शोर मचाने लगती है।
***

माँ

मैं कहता हूँ माँ !
माँ समझ जाती है भूख
मैं कहता हूं माँ
माँ समझ जाती है पानी
मैं कहता हूं माँ
माँ समझ जाती है नींद
सब कहते हैं-
मेरी माँ पढ़ी- लिखी नहीं है
फिर माँ कैसे निकाल लेती है
एक शब्द के अनेक अर्थ
माँ जब कहती है – बेटा !
तब तमाम डिग्रियों के बावजूद
मैं उसका अर्थ क्यों नहीं समझ पाता ?
***

सुनिए पूर्ण विराम तक

आँखों की एक सीमा है
बीस- तीस गज तक
पहाड़, पेड़ तो दूर से भी दिखाई देते हैं
मगर छोटी चीजों का क्या?
और छोटे लोगों को शामिल करें ?
कर ही लेते हैं,ये छुटे हुए लोग हैं
सदियों से छूटते, टूटते रहे हैं
इन्हें पढ़ा जाना चाहिए नजदीक से
छोटे अक्षरों की तरह
जैसे दवा की शीशियों पर
सेवन करने की विधियाँ अंकित होती हैं
इन्हें बरता जाना चाहिए बिल्कुल इसी तरह

एक जरुरी चेतावनी यह भी कि
चश्मा एक बार जरूर साफ कर लें
इन्हें पढ़ने के पहले
इनके चेहरे पर अंकित कोई भी
कौमा, विसर्ग या विस्मयादिबोधक चिह्न छूट न जाए
इन्हें पढ़िए , इन्हें सुनिए और कोई नसीहत देने के
पहले
इन्हें निर्बाध रूप से बोलने भी दीजिए पूर्ण विराम
तक।
***

आदमी भी नहीं रह पाऊँगा

मैं भी काम की तरह हूं
ज़रूरी काम की तरह
इसी तरह लोग निबटते हैं मुझसे
खुसर- फुसर सुन ही लेता हूं
कि हूं काम का आदमी

गंभीरता से सोचता हूं -
जिस दिन काम का नहीं रह पाऊंगा
गैर जरूरी काम की तरह भुला दिया जाऊंगा
आदमी भी नहीं रह जाऊंगा।
***

लोग तो एक कप चाय में बदल जाते हैं

देखते-देखते कितना कुछ बदल जाता है
एक साल में ही छः-छः ऋतुएं
और चौबीस घंटे में समय चार बार
अर्थात सुबह,दोपहर,शाम और रात
पेड़, पौधे,घर द्वार,गांव, मोहल्ले
सब कुछ इतनी तेजी से बदलते नजर आते हैं
मानो जैसे पीछे छुपे जा रहे हों
ट्रेन के सफर में पटरियों के किनारे के पेड़
इतने बदलावों के बीच
तुम्हारा नहीं बदलना महज इत्तेफाक है
यहां तो लोग एक कप चाय में बदल जाते हैं।
***

नदी का गीत

नदी ने मुझे बताया था-
बहने और बहते जाने में सुख है
ठोस होकर कौन जमना चाहेगा
नदी ने कहा -
मैं बहती हूं इसीलिए
हरदम गाती रहती हूं
तुम सुन सकते हो अहर्निश मेरा संगीत
लोग झूठ कहते हैं कि मैं समंदर से मिलना चाहती हूँ
मैं कभी समंदर से मिलना नहीं चाहती
अपनी मिठास को खारेपन में क्यों बदलूं
मुझे उस मिलन की कोई आकांक्षा नहीं
जो कर दे मेरा अस्तित्व समाप्त
सुनो! मैं रुकना नहीं जानती
बहना धर्म है मेरा
मैं किसी के लिए नहीं रूकती
सुन सको तो सुनो संगीत
यह मिलन का गीत नहीं है ।
***

विश्वास

इतने सारे पत्ते
एक दरख़्त पर !
हवा के साथ अठखेलियां करते
धूप - आतप सब कुछ सहते
जी लेते हैं पूरी उमर
पांच ऋतुओं को
कर लेते पार
कितनी सहजता से
इतनी मजबूत पकड़ होती है दरख़्त पर
इसीलिए वे शायद नहीं सोचते पतझड़ के बारे में
आना है तो आए पतझड़
लौट आयेंगे बसंत में ये पत्ते
फिर से उसी दरख़्त पर
दरख़्त वहीं खड़ा करता रहता है इंतजार
पतझड़ में भी अपनी बांहे फैलाए
उसकी रगों में बहते हुए रस
उसे सूखने नहीं देते
यह कहते रहते हैं-
विश्वास करने वाले शिरोधार्य होते हैं
वही बसंत लाते हैं ।
***

जन्म- मुजफ्फरपुर (बिहार), प्रश्नकाल का दौर नाम से व्यंग्य संकलन प्रकाशित। साहित्य की स्तरीय पत्रिकाओं में सौ से अधिक कविताएं एवं व्यंग्य प्रकाशित।पहला कविता संकलन शीघ्र प्रकाश्य । संप्रति- भारत सरकार के एक कार्यालय में अनुवाद कार्य से सम्बद्ध एवं स्वतंत्र लेखन। संपर्क- 9431582801 lalancsb@gmail.com

होने और न होने की बहसों के बीच मैं ईश्वर की तलाश में हूँ- अशोक कुमार की कविताएं

अशोक कुमार की कविताओं में लोक का ठेठपन, उसकी पीड़ा, उसकी चुनौतियाँ, उसके निश्चल स्वप्न , समाज का खोखलापन और जन्मभूमि से प्रवासित होने का दुःख झलकता है। अनुनाद पर यह उनका प्रथम प्रकाशन है। कवि का यहाँ स्वागत है ।

हर्ट मस्क्युलेनिटी

हम पुरुष थे
हमने प्रेमिकाएं भी कद में छोटी चाहीं
और परीक्षा में उनके ज्यादा अंकों से जलते रहे।

हम पुरुष थे-
हम बहनों को घर पर रुकने की सलाह देकर
चौराहों पर सिगरेट फूंकते रहे।

हमारी मर्दानगी तब आहत हुई

जब साथ चलते-चलते
पत्नी आगे निकल गई दो कदम।

और तब भी जब उसकी पोस्ट ऊंची थी
और तनख्वाह ज्यादा।

उसकी फोटो पर लव रिएक्शन देखकर भी
घुटती रही हमारी मर्दानगी
और ठेस लगती रही
इनबॉक्स में पुरुष मित्रों के मैसेज पढ़कर।

हमारी मर्दानगी बहुत कमज़ोर थी
वह उसके प्रणय निवेदन पर भी हर्ट हुई
और उसके इनकार पर भी ।

हर्ट मस्क्युलेनिटी के बोझ से दबे हम
औरतों को वेश्या कहकर
छुपते-छुपाते जाते रहे
शहर की सबसे बदनाम गलियों में ।

***

गद्दी

मेरे घर से होकर गुजरता था
भेड़-बकरियों का एक रेवड़ हर साल
जिन्हें हांककर ले जाते थे
सफ़ेद ऊनी चोला पहने
कमर पर काले रंग का ऊनी डोरा डाले
और सफ़ेद साफा बांधे कुछ लोग ।

वे चार-पांच लोग होते थे
दो-चार बड़े-बड़े कुत्ते
पीठ पर लोहे के बर्तन
ऊन की सफेद और भूरी चादरें
गठरी में काली दाल
भेड़ों खाल से बने कट्टे में मक्की का आटा
पुड़िया में हल्दी, नमक
और डब्बे में सरसों का तेल लिए
वे इधर से उधर घूमते थे।

वे अपनी भेड़-बकरियों को धण (धन) कहते

गर्मियों में वे लाहुल जाते
और सर्दियों से पहले तराई में वापिस आ जाते
वे दो दिन हमारे साथ ठहरते थे
हमारे खेतों में हर साल ।

पापा बताते कि भेड़-बकरियों की मून (मल) से
उर्वर होती है धरती
ऊन से बनते हैं
पट्टी वाले कोट, जुराबें, स्वैटर,
और ओढ़ने-बिछाने के लिए गर्म पट्टू ।

मैं हमेशा पूछता कि कहां रहते हैं ये लोग?
तो पापा बताते कि
सबसे आखिरी पहाड़ी के पीछे हैं इनके घर
जहां रहना इन्हें कभी नसीब नहीं होता ।

रोज़ रात असमान की खुली छत तले
अस्थाई चूल्हा जलता
मक्के के मोटे-मोटे रोट पकते
और बकरियों के दूध के साथ चूर कर खाये जाते ।

भेड़-बकरियां आग की परिधि में
ऐसे झुण्ड बनाकर बैठतीं
जैसे कि किसी रैली में आयीं हों ।

रात को इनकी बांसुरी पर
"कुंजू-चंचलो" की धुन बजती रहती देर तक
रात भर बांसुरी की तान में
ये विरह के गीत गाते और अपनों को याद करते ।

इन्हें देख कर भावुक हो जाते थे पापा
वह रात भर इनके साथ रुकते
बातें करते और वहीं सो जाते
घास पर ऊनी चादर बिछाकर ।

पापा ने बताया यह 'गद्दी' लोग हैं
और हम भी वही हैं 'गद्दी' भेड़ पालने वाले
गड़रिये।

हम भी घूमते थे यहाँ से वहां
हर मौसम में बारिश-धूप सब खुले में सहते हुए
चिंता और फ़िक्र को पीठ पर लादकर
पीड़ाओं को बांसुरी पर गुनगुनाते हुए उम्र भर ।

मेरी मदद करो

होने और न होने की बहसों के बीच
मैं ईश्वर की तलाश में हूँ ।

मैं किसी मलबे के नीचे हूँ
जिसमें घुले हुए कांच चुभने लगे हैं मेरी पीठ पर
मेरी पीठ पर आयीं खरोंचों से
उभरने लगे हैं पुरानी सभ्यताओं के नक़्शे ।

मेरी पीठ, अब मेरी पीठ नहीं है
धर्मयुद्धों से लहूलुहान सभ्यताओं का समुच्चय है ।

मेरी देह में अवशेष ढूँढने वालों के हाथों में
वे मोटी-मोटी किताबें हैं
जिनकी लिपि तक वे नहीं जानते ।

वे उन किताबों की व्याख्यायें
किसी नुकीले पत्थर से खुरचकर
मेरी पीठ पर लिखना चाहते हैं
और....मैं चुप हूँ।

मैं चीखना चाहता हूँ
किन्तु मैं नहीं जानता कि किस भाषा में चीखूँ
हे! दुनिया के भाषाविदों मेरी मदद करो ।

***

डरावने स्वप्न

बाबा डरावने किस्से सुनाया करते थे
इतने डरावने
कि मैं डरा-सहमा रहता कई-कई दिन ।

उन किस्सों के किरदार मेरे आसपास रहते थे
हर वक्त मुझे डराते हुए ।

वे किस्से नहीं थे सच्चाइयाँ थी
ऐसा बाबा कहते थे।

बाबा बताते कि जब थैले में बाट डालकर
पीटा गया था उस प्रेमी को
जो रात के अँधेरे में अपनी प्रेमिका से मिलने आया

और फिर पकड़ा गया
वह मरने के बाद प्रेत बन गया था।

और वो जो अपनी आठवीं संतान को जनते हुए
मर गयी थी हरखू की मां
वो भटकती है चुड़ैल बनकर।

और वो भीखू लोहार
जो गलती से देवता के मंदिर में घुस गया था
मंदिर को अपवित्र करता हुआ
सज़ा मिली थी उसे
जहर खाने या दीवार में चिने जाने की।

और उसने जहर खाने और दीवार में चिने जाने में
से
दीवार में चिना जाना चुना था
वो भी भटकता है भूत बनकर ।

बाबा बताते कि गाँव की वह बावड़ी
जो घने पेड़ो से घिरी हुई
गाँव के दाखिन्न में दूर कहीं थी
बिल्कुल सुनसान, सन्नाटे को ओढ़े हुए ।

कि जहाँ हर वक्त रहती थी
उलटे लटके चमगादड़ों की दुर्गन्ध
कि जहाँ दिन में भी बोल पड़ते थे उल्लू
कि जहाँ झाड-झंखाड़ों के बीच
नहीं पहुँचती थी सूरज की रौशनी
ये तीनों वहीं रहते थे
अपने-अपने बदले की योजनायें बनाते हुए ।

मेरे सपनों में आज भी कभी-कभी
आती है वो सूनी बावड़ी
दिन में भी निपट अँधेरी
झाड़ियों, बेलों से घिरी हुई
बिल्कुल किसी अँधेरी खोह की तरह ।

मैं उन तीनों प्रेतों के बीच-
खुद को घिरा हुआ पाता हूँ,
अकेला, बिल्कुल अकेला
मैं डरता हूँ, और मेरे हाथ प्रार्थना में उठ जाते हैं ।

मैं कभी उस प्रेमी की प्रेमिका हो जाना चाहता हूँ
जिसे मार दिया गया
और कभी उस मां की आखिरी संतान ।

और कभी-कभी उस मंदिर का देवता होकर
भीखू लोहार से माफी मांगना चाहता हूँ ।

पर ऐसा हो नहीं पाता
मैं डर जाता हूँ
वे तीनों जोर से हँसते हैं
मैं और डरता हूँ
वे और जोर से हँसते हैं
और तब खुल जाती है मेरी नींद
अब मैं इस स्वप्न से आज़ाद होना चाहता हूँ ।

***

मैं डरता हूँ

डरता हूँ कि जब कभी वापिस लौटूंगा
तो कहीं वो शहर
मुझे पहचानने से इनकार न कर दे।

कहीं वो यह न पूछ बैठे
कि क्या लेने आये हो इतने दिनों के बाद।

और बड़े दिनों के बाद
अगर कहीं किसी को न पहचान पाया
तो डरता हूँ-
कि वो मेरे बारे में क्या सोचेगा?

जब मेरे कुछ अपने
मुझे वहां नहीं दिखेंगें
तो किससे पूछूँगा उनका पता ठिकाना?

नये रास्तों पर चलना
हो सकता है पहले से कुछ आसान हो गया हो
किन्तु डरता हूँ-
कि कहीं रास्ता न भटक जाऊं।

एक अरसे के बाद
अकेले, चुपचाप
जब अपने ही आंगन में खड़ा होऊंगा
तो डरता हूँ-
कि कहीं वहाँ से गुजरने वाला कोई
यह न पूछ लें-
कि "कौन हो तुम"?
"तुम्हें पहले तो कभी नहीं देखा।"

***

संपर्क: 9015538006
ईमेल: akgautama2@gmail.com

शुद्धता एक मिथक है - देवेश पथ सारिया की कविताएँ

देवेश पथ सारिया के पास जीवनानुभवों का एक समृद्ध विस्तार है। भारत से ताईवान तक के रहवासी होने के अनुभव और धरती से अंतरिक्ष के कार्यक्षेत्र के अनुभव उन्हें जीवन और उसकी हलचलों को देखने की एक निजी दृष्टि देते हैं। यह दृष्टि उनकी कविताओं में दिखाई देती हैं। वे न सिर्फ़ हिन्दी के समकालीन सृजन-संसार में रचनात्मक आवाजाही रखते हैं, बल्कि अपनी कविताओं में इस संसार से संवाद भी करते हैं। कवि की इन कविताओं का अनुनाद पर स्वागत है।

***

ताइवानी बैंक में एक दिन

हल्का-सा जी दुखा
टिक मारते हुए
बैंक के फॉर्म में आय के तीन विकल्पों में से
सबसे कम सालाना कमाई वाले विकल्प पर

मुझे ढांढ़स बंधाने को
बैंक कर्मचारी कहती है
वह भी उसी आय वर्ग में ठहरती है

हम दोनों तय करते हैं
राष्ट्रपति त्साई से कहेंगे
हमारी तनख्वाह बढ़ाएं
फॉर्म के अगले कोष्ठक में पहुंचाएं

हवाई हाय-फ़ाइव दे, हम हंसते हैं

बैंक कर्मचारी ने देखे हैं
हमारी आय वर्ग में सबसे कम कमाने वाले लोग
और, उच्चतम आय वर्ग में शामिल व्यक्ति भी
वह बताती है—
रईस लोग
बड़े गंभीर होते हैं
फॉर्म में टिक मारते समय।
***

लोक

तुम उसे किसी गिनती में नहीं गिनोगे
और उसे इसकी ज़रुरत भी नहीं है
तुम्हारे बाज़ार की भीड़ में शामिल होने
वह यहाँ आया ही नहीं है

मिट्टी में सना
मां-बोली से बंधा वह

लोक कोई 'चोखी ढाणी' नहीं है
न ही भव्य सुपर मार्केट के किसी
'विलेज-थीम' रेस्त्रां में
माहौल बनाने को टंगी
बोरी और लालटेन

लोग-लुगाई, माटी-बोली से बनता है-
लोक, एक अलहदा नैसर्गिक रंग
देश, बहुतेरे लोकों का समुच्चय

लोक गायक के सुर, तानसेन की नायीं*
लोक गायिका, कोयल माई
लोक देवता, सबसे बड़ा पनमेसरा
लोक कवि, गोबर में सनी भैंस को
चंदन लेपित देखता।

*की नायीं - की तरह
***

विद्रोही तगड़ा कवि था

(रमाशंकर यादव विद्रोही के लिए)

ओ आदिवासी, मेरे वनवासी
ओ नर-वानर
जेएनयू के बीहड़ में घूमते
पेड़ों के नीचे सोते
खांसते, बलगम थूकते
थकती रही देह तुम्हारी

तुम्हारे दम तोड़ने के बाद
घुलमिल गए निस्सीम के साथ
तुम्हारी कमीज़ की जेब में बैठे दोनों बाघ
बीड़ी के धुएं का छल्ला बनाते हुए

तुम्हारे प्रस्थान के बाद गुजरे वर्षों में
बुलंद हुई है औरतों की आवाज़
वे मांगने लगी हैं कल्पों का हिसाब
लगी हैं बिछाने अपनी अदालतों की मेज़
पसीने में लथपथ वे मुस्कुराती हैं
आसमान में तैरते बादल को देख

क्रुद्ध हैं अब भी तुम पर
पुरोहित, राजा और सिपाही
वे नहीं रखना जानते
मृतक विद्रोही के सम्मान की भी मर्यादा
धरती में गहरे जमा हुआ भगवान
देखता है तमाशा तमाम

तुम्हारे मरण पर मसीहा
ईश्वर के स्तुति गीत गाते हैं
नहीं जानते वे
कि मरा हुआ विद्रोही
मसीहाओं से और ऊँचा हुआ जाता है

आती है तुम्हारे लिए पुकार
मोहनजोदड़ों के तालाब की अंतिम सीढ़ी से
मिस्त्र के पिरामिड और चीन की दीवार बनाने में
मरखप गए मजदूरों की हड्डियां
तुम्हारे अस्थि कलश से
कुछ कण राख मांगती हैं
उनकी ध्वनि की आवृत्ति नहीं है
अंध भक्तों की श्रव्य परास में
उनकी चीख़ कभी नहीं सुनाई दी
आकाओं की जमात को
और उनकी पिछलग्गू पाँत को

आकाशीय घटक तत्व तुम्हारा
बूँद बन गिरा है एक नदी में
नदी जो भले न रही हो
तुम्हारी नानी की आंख
जा मिली है उसी सागर में

कोई नहीं मरा तुमसे पहले
न किसी का भाग्य विधाता
न कोई बूढ़ा काका
तुम्हारी चिता जले अब सालों हुए
फिर भी है गूंजता यह स्वर-
"विद्रोही बहुत तगड़ा कवि था"।
***

उम्मीद, पखेरू का घर

रोहित ठाकुर जब लगाते हैं
अपनी कविताओं के साथ
प्रयाग शुक्ल के बनाए चित्र
तब आभास होता है सहसा
कि शब्दों का ढांचा
चित्र में खड़ा है
इमारत, झाड़फानूस या किसी और तरतीब-सा
और जो पसरा है कैनवास पर
वही कविता बनकर बह निकला है
मसलन, एक बंद दुनिया के कोटरों में
कोने लांघने की मायूस कोशिश करते लोग
उम्मीद, एक पखेरु का घर

हर चित्र में
बहने को आतुर
एक कविता होती है

कहीं होता है कोई चित्र
कविता की आत्मा को दर्शाता

बहुत कम चित्रों को मिल पाता है उनका कवि
बहुत कम कविताओं का उनका चितेरा
सबके नसीब में कहां होता है सोलमेट?
***

उनका वैमनस्य

बिच्छू का डंक उतारने के मंत्र में
चुटकी लेते हुए वे जोड़ देते हैं
विरोधी खेमे के नेता का नाम
बिच्छू के प्रतीक के तौर पर

हास्य तात्क्षणिक होता है
जबकि मंत्रों में हुई घालमेल चिरंजीवी

उनका वैमनस्य
भाषा में जड़ें जमा रहा है
प्रदूषित करता हुआ
भविष्य के होठों को।
***

शुद्धता एक मिथक है

वैज्ञानिक शोध ने मुझे सिखाया
कि किसी परिणाम के कोई मायने नहीं
जब तक उसमें त्रुटि ना बताई जाए

एक छोटे से पैमाने से मापकर
जो हम बोल देते हैं फटाक से—
फलाँ वस्तु की लंबाई तीन सेंटीमीटर

बिना त्रुटि के है वह बकवास
या मात्र एक आभास
वास्तविकता के आसपास

त्रुटि आंकलन के तरीकों में है एक यह भी
कि दोहराते जाओ मापन का कार्यक्रम
अनंत बार में पहुंच जाओगे शुद्धतम मान तक

अनंत एक आदर्श स्थिति है
वह केवल सैद्धांतिक रूप में संभव है
शुद्धता अस्ल में, एक मिथक है

बहुत करीब से परखने पर
कुछ भी नहीं होता आदर्श
सममितता की होती है अपनी सीमा
माइक्रोस्कोप से देखने पर धूल
त्रिविमीय विस्तार में समान त्रिज्या की
गोलीय रचना नहीं होती

एक बढ़िया कैमरे से ज़ूम करके देखने पर
रेंगने वाला वह लंबा कीड़ा मुझे लगा
पुरानी हिंदी फिल्मों के खलनायक जैसा
दुराचारी नहीं, कैरीकेचर-सा

'घर-घर मिट्टी के चूल्हे हैं'
इससे आगे की पंक्ति
मुझे मेरे एक रिश्तेदार ने सुनाई थी—
'पैंट के नीचे सभई नंगे हैं'

उस दूर के रिश्तेदार को
मेरे क़रीबी रिश्तेदार
ख़ानदान की नाक कटाने वाला बताते थे।

***

अंधेरे के असफल जिप्सी

लगभग सभी बच्चों की
कल्पनाओं में
शामिल रहती है
सितारों की फंतासी भरी दुनिया

ताज़ा जवान ख़ून
भावनाओं के फिसलन भरे मोड़ पर
हो जाना चाहता है एक जिप्सी

बच्चे में
कूट-कूट कर भरी होती है
जिज्ञासा
और युवाओं के पास
होते हैं कुछ इंक़लाबी नारे—
कुछ कर गुज़रना
या सिमटना बेफ़िक्री में

आसपास,
इन बच्चों और युवाओं के
होते हैं
कुछ अड़ियल वयस्क, प्रौढ़ और बुज़ुर्ग
जिनकी ठसक और दख़ल से
ख़ैरियत से आबाद रहते हैं
आजीविका के अधिक सुरक्षित विकल्प

जिज्ञासाएं रीत जाती हैं
जिप्सीपन भी कहाँ रह पाता है ज़िंदा
बूँद-बूँद रिसता
ख़ाली होता है घड़ा
परियों की कहानियों
और जुनूनी गीतों का

एक 'सुरक्षित' काम में लट्टू की तरह नाचते
किसी दिन देखते हैं ये
आँखें फाड़ तारे देख रहे आदमी को
और एक हूक सी उठती है
कहीं भीतर

जब कभी मिलते हैं ये
किसी अन्य असफल जिप्सी से
फुसफुसाते हैं-
"सब कुछ छोड़ हिमालय चले जाना है"

'हिमालय पर ...'
सोचते हुए
पुराने फिल्टर पेपर पर
उभरने लगता है भुतहा अतीत।
***

सम्प्रति: ताइवान में खगोल शास्त्र में पोस्ट डाक्टरल शोधार्थी।

मूल रूप से राजस्थान के राजगढ़ (अलवर) से सम्बन्ध।
फ़ोन: +886978064930
ईमेल: deveshpath@gmail.com

टर्रापन लिए मीठे फल - भूपेन्द्र बिष्ट की कविताएँ

भूपेन्द्र बिष्ट लम्बे समय से कविता लिख रहे हैं, लेकिन उनकी उपस्थिति समकालीन दृश्य में एक ख़ामोश और संकोची उपस्थिति रही है। दैनिक जीवन की साधारण हलचलों, जनों, घटनाओं और बेहद मामूली लगते प्रसंगों से रची उनकी कविताएं, मनुष्य जीवन के लिए अनेक शुभेच्छाओं से भरी कविताएँ हैं।

टर्रापन लिए मीठे फल

उद्यान विशेषज्ञ
कुछ ज्यादा बता नहीं पाए
उन फलों का मौसम ठीक-ठीक
फल संरक्षण केंद्र के प्रभारी भी जानते नहीं थे
एकदम सही सही
उन फलों की परिपक्वता के बाबत
जिनके बगीचे में फलते थे
ये फल
वे सिर्फ़ इतना ही कहा करते
भईया कभी जाड़ों तक में पकते हैं ये
तो कभी आषाढ़ - सावन ही में जाते हैं, पक
बाज़ार में बिकते देखा भी नहीं इन फलों को कभी
न किसी स्कूली किताब में इनका चित्र ही दिखा
मुझे तो इन फलों के नाम पर भी
संशय रहा कुछ दिन
'काकू' और 'लुकाट' शब्द ही मेरे लिए अभुक्त थे
और विस्मयकारी
आखिरकार
हुआ यह क़िस्सा कोताह
जब इन रसीले फलों के बाग़बां की लड़की
बन गई मेरी प्रेमिका
और घर से चुरा कर
या घर वालों की नजरों से छुपा कर
मुझे देने लगी मौसम भर ये फल
इस इसरार के साथ
कि इन्हें खा लेना, हां!
चटख नारंगी और गहरे पीले
छांट कर लाती हूं
तुम्हारे लिए.
***

अफगान स्नो

कुछ सब्जियां
जिन्हें पिता न जाने कहां से लाते थे
और मां ही बनाना जानती थी उनको
अब दिखाई नहीं पड़ती
जिम्स कालरा की पाक कला पुस्तकों में
ल्यूंण, सगीना, उगल और तिमिले :

इन जैसी सब्जियों के कुछ चित्र मौजूद हैं अलबत्ता
दूसरे नामों से
कुछ घर गृहस्थियां चल जाती होंगी
अजवायन के बगैर, या मेथी के दाने न हों तब भी
पर मां के पास प्याज के
छोटे छोटे काले बीज तक रहते थे इफ़रात में
आषाढ़ शुक्लपक्ष की देवशयनी एकादशी से
कार्तिक में देवोत्थान एकादशी तक
पहाड़ी दाल में छोंक - तड़का नायाब
दही- आलू में बघार - धुंगार अद्भुत
मां के साथ ही ख़त्म हो गई कुछ चीजें
पर मैंने उनकी याद को
बनाए रखने का जतन किया है
मुकम्मल
अफगान स्नो की एक पुरानी खाली डिबिया
साफ कर
उसमें रख छोड़ा है जीरा.
मां की पिटारी में भीमसेनी काजल की छोटी
डिबिया
और भृंगराज केश तेल की एक शीशी के साथ
अंटी पड़ी मिली थी
मुझे यह अफगान स्नो की डिबिया.
***

डाकपाल महोदय

छपास क्षुधा नहीं थी वह
प्योंली* के मौसम और हिसालू* के तोपे की रुत
सबको बताने का जज़्बा जैसा कुछ था वह
नराई° और निशास° के चित्र हू-ब-हू लिख देने
जैसी गर्वीली फ़नकारी पर
दाद पाने की लालसा थी कदाचित
हर दिन दो कविताएं लिखी जा रही थी
संपादकों की खेद सहित वापसी वाली चिट
लिफ़ाफे में हर हफ्ते मिलने लगी मुझे
और मैं इन चिट्ठियों से प्यार करने लगा
बेइंतहा
प्यार -- यह बढ़ने लगा फिर
कस्बे के उप डाकघर तक से हो गई
जबर्दस्त प्रीति
यहीं तक किस्सा सीमित नहीं रहा
मुझे पोस्टमैन भी लगने लगा अतिप्रिय
यह उस जमाने की बात है
जब लेटर बॉक्स का जंग खाया, धूसर रंग भी
मुझे लगता था गुड़हल के फूल से भी ज्यादा सुर्ख
स्वाद की ज़ुबान में कहूं तो
अधिक पक चुकी रक्ताभ किलमोड़ी* से भी सुस्वादु
फिर ख़त-ओ-किताबत का दौर
लगभग ख़त्म होता गया
और आज एक बुरे सपने की तरह
यह सच्चाई हमारे समय में व्यापती चली जा रही है
लोग प्यार करते हैं अब भी
सुना जाता है, दिख भी जाता है
चिट्ठियां मगर नहीं लिखते इक दूजे को प्रेमी जन
इसलिए संशय होता है प्यार किए जाने की बात पर
"पैडमैन" फिल्म के लिए कौसर मुनीर
न जाने क्योंकर लिख गई इधर
'ओ मेरे ख्वाबों का अंबर
ओ मेरी खुशियों का समंदर
ओ मेरे पिनकोड का नंबर आज से तेरा हो गया
....'
मैं तो अपने 263130# पर
इस क़दर रहा फ़िदा

किसी को इसे देने के बारे में सोच ही नहीं सकता था
बहरहाल मैं
निकलता बढ़ता रहता हूं उस उप डाकघर के बगल से
मुतवातिर आज भी
हालिया देखने में आया लेटर बॉक्स के मुख विवर पर
चिड़ियों ने बना लिया घोंसला जैसा
डाकपाल महोदय ने
मुनादी कर रक्खी है अब लेटर बॉक्स न छूने की
कदाचित चिड़िया ने अंडे दे दिए हों वहां
चिट्ठी लिखे जाने की वह विकलता मर गई
चिट्ठी पाने का वह आह्लाद सूख गया
तथापि यह देखकर अच्छा लगा
कुछ जन हैं अभी
जो प्राणियों पर रखते हैं दया का भाव
दूर दराज की रियासतों तक, महलों के गुंबदों तक
कभी तो सायबान और बारादरी तक भी
खत पहुंचाने वाले परिंदों के चूजों को
बचाये रखने का दृश्य है यह
इस दृश्य के प्रति जतन का भाव रख रहा है
वह युवक भी
जो आया है अपने मोबाइल में रिचार्ज कराने
उप डाकघर के ठीक बगल वाले ठीया पर.
* पहाड़ी फूल और फल, ° याद और उदासी.
# 263130 नैनीताल के outskirts में मेरे रहवास वाले पो. ऑ. ' बिष्ट स्टेट ' का वर्षों पिन कोड रहा, अब इस उप डाकघर को शाखा पो. ऑ. के रूप में निम्नीकृत कर ज्योलीकोट 263127 से संबद्ध कर दिया गया है.
***

फ़र्क

मायके की यह बात याद रहती है औरतें को
इसे निबाहती भी हैं वे बखूबी
अपने घर आकर
गुंथा हुआ शेष आटा गाय के लिए रख छोड़ती हैं
बिला नागा
गुजश्ता कुछ बरस पहले
इन कुंअरियों को बताया गया था
चूल्हे में सबसे पहले
बित्ते भर की एक रोटी ज़रूर बनाना
पुरखों के लिए
लगे उसे सिर्फ़ एक ही पीठ
तवे पर
कन्यका ही थी जब ये विगत में
रही इन नवोढ़ाओं की दुनिया एकरस
प्रेम वर्जित विषय था
इनके बसावट में
और जहां तक भूगोल था इनका
कोलतार की सड़क नहीं पहुंची थी वहां
विवाह के उपरांत : अगली सुबह
इनकी विदाई बेला तक
गौनहाई विवाहिता, इन स्त्रियों का संसार
अब रोज़ नया
अपितु दिन का हर पहर भी नवीन
सद्य माताओं के रोजमर्रा की जिंदगी में तो
हंसी- ठट्ठा, जरा चुहल, कुछ बरजोरी भी
इधर आमेलित हो गई है
कुछ रिश्ते के, कुछ नकल के युवजन
इन स्त्रियों से कार्तिक में पूछते मिलेंगे आपको
भाभी ! आज बारिश तो नहीं होगी ?

जबकि आकाश होता है निरभ्र
ऐसे समुत्साह के क्षण, इस तरह उमंगने के पल
बाधित रहते हैं
हर पूर्णमासी को, बस
और महीने में कृष्ण एवं शुक्ल; दोनों पक्षों की
एकादशी की तिथि को भी.
***

बारिश

आध्यात्मिक प्रवृति के रहे होंगे
वे मौसम विज्ञानी
दक्षिण पवन को दिया जिन्होंने
नाम 'मानसून'
वर्षा ऋतु तो प्रकृति का स्नान-पर्व है
हहराती गर्मी इसकी पूर्व कथा
और शरद उत्तर गाथा है इसकी
मूसलाधार बारिश में
रात-दिन भीगते, नहाते जंगलों का दृश्य
बहुतों के लिए अनदेखा
एकदम गुह्य और पोशीदा
अतिरेक में भरा हुआ निजता से
और किंचित वर्जना भी ओढ़े
यह कोई कमयाब
मुआमला हो जैसे
सद्य:स्नाता स्त्री को लेकर
कालीदास ने भी कल्पित विस्तृति
का ही प्रणयन किया है
ऐसा निष्कर्ष है उनका
जो पढ़े और गुने हैं "मेघदूत"
सृष्टि भर की हरियाली से
बारिश का एक गहरा रिश्ता है
जैसे वसंत से बेला का रिश्ता है
और शरद से है हरसिंगार का
नदियों में उफान भी ज़रूरी है बारिश के मौसम में
साथ में कुछ दूसरी चीज़ें भी हैं अपरिहार्य
मसलन, निरर्थक प्रतीक्षा
किसी पेड़ के नीचे
बारिश के थम जाने तक
और कुछ वृथा चिंतायें
मन में गहरे दबी हुई
बादल छंट जायें, तब भी
घर में बच्चों के द्वारा
ज़रूरी कागज़ात से
छुपा कर बना ली गई
एकाध कागज़ी नाव भी
इनके अतिरिक्त.
***

आग वाला चूरन

भुट्टे बेचने का फड़ लगाया है उसने
सुबह से अब तक 53 बेच चुका
भुट्टों के उतरे चोल की ढेरी में वह आकंठ डूब गया
है
मॉल रोड पर ही
मुदितमना उस लड़के को
सुलगती अंगीठी की तपिश
जेठ में भी लग रही है अति शीतल
4 रुपए एक से हिसाब से खरीदे भुट्टे
बिक रहे हैं 10 के और बड़े वाले तो 15 के भी
बालक की जिद के आगे न चली मां की
खरीदना ही पड़ा आग वाला चूरन
पर तीखा लगा बच्चे को

खुलासा कर रही है मम्मी, कसैला है
कह नहीं सका बाबू
फैंक दिया गया कागज़ की तश्तरी समेत
अनारदाना, इमली के गुट्ठल संग गुंथा
सड़क पर ही
मुनादी है पालिका की तरफ़ से
"कृपया कूड़ा कूड़े दान में ही डालें
शहर को विरूपित करना जुर्म है
जुर्माना भी वसूल किया जाएगा"
इससे बेखबर सैलानी खुले आम
पेय की बोतलों को छटका दे रहे हैं जहां तहां
पहाड़ियों की सैर के वास्ते घोड़ा तय करते हुए
ऐसे सौदा सुलुफ़ और बार्गेन में वक्त तो लगेगा ही
लो, घोड़े ने लींद भी कर दी इस दरमियां वहीं
दिल्ली के अख़बारों का डाक संस्करण भी
इस पहाड़ी शहर में पहुंचता है दोपहर बाद
आ गया अब, वेंडर आवाज़ देते जा रहे हैं
ले रहे हैं पेपर जो जन
सरसरी निगाह डालना चाह रहे हैं तुरंत
हेडलाइंस पर
खुला अख़बार, गिरे कुछ पीले-लाल हैंड बिल्
और उड़े भी इधर उधर
पर्यावरण बिगाड़ने की इन सायास हरकतों के बीच
कुछ सुदर्शन युवक युवतियां --
मैं तो कहूंगा उन्हें श्लील भी, शिष्ट भी
निकल पड़े हैं
सटे जंगल की जानिब
मन में लिए कोई हरी-भरी उम्मीद
सुकोमल हंसी और आर्द्र बातों के मध्य
कदाचित मोबाइल में कैद करें वे
हरीतिमा भी.
***

हंसने पर मुमानिअत

तुम्हारी हंसी में
न कोई जादू है, न कोई साज़िश
ख्वाहिश भी नहीं कोई, न मैसेज जैसा कुछ
किसी टहनी पर उगा एक पत्ता समझती है वह मुझे
और हवा की तरह हिलाती है
मान लो, तुम्हारी हंसी एक फूल होती
तो सबसे पहले मैं उसे तोड़ लेता उस वृंत से
जहां वह खिल रहा होता
फिर गिनता उसकी एक-एक पंखुड़ी को
और रखता किताब के हर पन्ने में एक
रह जाते जो पन्ने शेष
पुष्प दल की सीमितता से
उन्हें पढ़ता ध्यान से
देखता !
किस तरह व्यवधान पैदा करती है
तुम्हारी हंसी
मेरी पढ़ाई में तब.
***

सूटकेस

एक लंबे समय तक
बड़े शहर में रह चुकने के बाद
अपने गांव आते हैं जब हम
तो हमारे हाथ में सूटकेस होता है
इधर हाल में बनवाई गई चार कमीज़, दो पैंट्स
एक जोड़ा तौलिया, ब्रश, आफ्टर सेव
और एक मैगजीन
जाने क्या क्या होता है हमारे सूटकेस में

गांव में सुबह दो मर्तबा खोलते हैं हम सूटकेस
दिन में तीन बार
हमारे अलावा इसे कोई छू भी नहीं सकता
बचपन में जिन खेतों की तरफ़
हम जाते तक नहीं थे
वहां सुबह - शाम टहलते हैं इस बार
जिन जगहों पर एक क्षण भी नहीं टिकते थे
वहां घंटों खड़े रहते हैं अब
लौटकर फिर से खोलते हैं सूटकेस
चार दिन में ही ऊब जाते हैं गांव से हम
बंद करते हैं सूटकेस
वापस लौट जाते हैं शहर को
सारा गांव देखता है हमें जाते हुए
हमारे हाथ में होता है सूटकेस.
***

उत्तर प्रदेश सरकार की सेवा से निवृत,

संप्रति स्वतंत्र लेखन.
संपर्क :
डॉ. भूपेंद्र बिष्ट
"पुनर्नवा"
लोअर डांडा हाउस
चिड़ियाघर रोड,
नैनीताल (उत्तराखंड)
-- 263002
मोबा : 6306664684
e mail : cpo.cane@gmail.com

कैरेबियाई कवि डेरेक वालकाट की 10 कविताएँ - चयन एवं अनुवाद : श्रीविलास सिंह

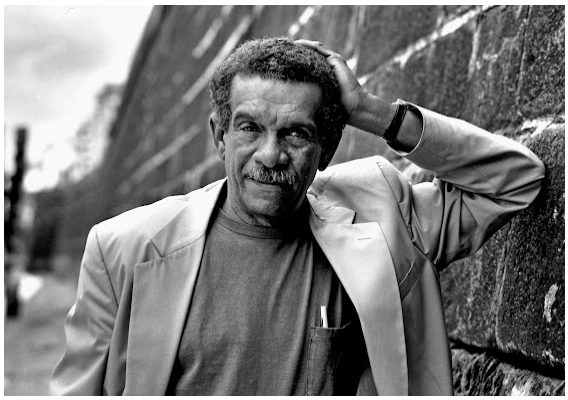

श्रीविलास सिंह ने विश्वकविता से बहुत महत्वपूर्ण अनुवाद हिन्दी में सम्भव किए हैं। हमें कैरिबियाई कवि डेरेक वॉलकाट की दस कविताएँ मिली हैं। संसार में जनसाधारण के जीवन की सुघड़ता और मनुष्यता के मूल प्रश्नों के लिए लिखने वाले कवि की कविताएँ हम तक पहुँचाने के लिए हम श्रीविलास जी के आभारी हैं।

डेरेक वालकाट

डेरेक वालकाट का जन्म 23 जनवरी 1930 को वेस्ट इंडीज़ स्थित पूर्व ब्रिटिश उपनिवेश सेंट लूसिया द्वीप पर हुआ था। कवि और नाटककार डेरेक वालकाट मूल रूप से चित्रकार के रूप में प्रशिक्षित थे किंतु काफी कम उम्र में ही उन्होंने लेखन प्रारंभ कर दिया था। उन्हें पहली बार प्रसिद्धि उनके 1962 में प्रकाशित संग्रह "In a Green Night: Poems 1948-1960" से मिली। अपनी लंबी और शानदार साहित्य यात्रा के दौरान वालकाट बार बार भाषा, शक्ति और स्थान के कथ्यों की ओर लौटे। उन्हें साहित्य के लिए 1992 का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। नोबेल कमेटी ने उनकी रचनाधर्मिता का

वर्णन करते हुए उनकी कविता को "ऐतिहासिक दृष्टि की शक्ति और बहुसांस्कृतिक प्रतिबद्धता से उत्पन्न प्रदीप्त काव्यकृति" कहा। वालकाट सामान्यतया बोस्टन, न्यूयॉर्क और सेंट लूसिया में रहे। वालकाट कवि के साथ साथ एक प्रसिद्ध नाटककार भी थे। उनकी मृत्यु 17 मार्च 2017 को सेंट लूसिया में हुई।

अनेक समीक्षक मानते हैं कि वालकाट अंग्रेजी भाषा के कुछ एक कवियों में से हैं जो महाकाव्य की रचना कर सकते हैं। कई उनकी रचना 'ओमेरोज़' को, जिसमे ट्रॉय के युद्ध की कल्पना मछुआरों के संघर्ष के रूप में कई गयी है, महाकाव्यात्मक उपलब्धि मानते हैं। ग्लेन मैक्सवेल उनकी कविता की शक्ति उसके कथ्य से अधिक उसकी कर्णप्रियता को मानते हैं। वेस्टइंडीज में एशियाई और अफ्रीकी समाज के आपस मे घुलमिल जाने की तुलना एक टूटे हुए बर्तन के टुकड़ों को जोड़ने में लगने वाले श्रम और स्नेह से करते हुए वे कहते हैं कि जब बर्तन टूटा नहीं होता तो उसकी संपूर्णता में उतनी पीड़ा उतना श्रम नही छिपा होता जितना उसके विभिन्न टुकड़ों को जोड़ने की प्रक्रिया में छिपा होता है। वे आगे कहते हैं कि ठीक यही प्रक्रिया कविता के सृजन की होती है और वे इसे सृजन न कह कर पुनर्सृजन कहते है- विखंडित स्मृतियों से। अपने एक आलेख में डेरेक वालकाट की कविता की चर्चा करते हुए प्रसिद्ध कवि जोसेफ ब्राडस्की न्यूयॉर्क रिव्यू ऑफ बुक्स में कहते हैं कि कैरेबियन द्वीपों की खोज कोलम्बस द्वारा की गई, अंग्रेजों द्वारा उन्हें उपनिवेश बनाया गया किंतु वालकाट द्वारा उन्हें अमरत्व की प्राप्ति हुई। वस्तुतः उन्हें नोबेल पुरस्कार मिलने की घोषणा वर्ष 1992 में ही हुई जब कोलम्बस के कैरेबियन द्वीप पर पदार्पण की 500वीं जयंती मनायी जा रही थी। वालकाट की कविता कैरेबियाई द्वीपवासियों की आवाज़ है। वालकाट के ही शब्दों में कहें तो उनकी कृतियाँ कैरेबियाई कबीलों के होठों पर पहले ही लिखी जा चुकी हैं और उन्हें सिर्फ इन कृतियों को स्वर देने के लिए चुना गया है।

मुट्ठी

मुट्ठी में जकड़ा है मेरा हृदय
इसके थोड़ा ढीला पड़ते ही, मैं लेता हूँ
उजाले की एक गहरी सांस,
पर तभी कस जाती है यह फिर,
मैंने कब नहीं चाहा प्रेम की पीड़ा को,
पर अब यह जा चुकी है
प्रेम से परे उन्माद तक।

यह है एक पागल की मजबूत पकड़,
स्पर्श करती अतार्किकता की हदों को,
चीत्कार करते अतल विवर्त में छलांग लगाने से पूर्व।

धीरज रखो मेरे हृदय,
कम से कम इस तरह जीवित रहोगे तुम।
***

कीर्ति

यह है कीर्ति: रविवार,
एक ख़ालीपन,
जैसा है बाल्थस में ,

पत्थर बिछी गलियाँ
सूर्यदीप्त, हवादार,
एक दीवार, एक टूटा मीनार

एक गली के अंत में
एक भद्र पुरुष बिना तामझाम के
एक मृत कैनवास की भांति

इस के सफेद फ्रेम और
फूलों के मध्य स्थित
ग्लैडियोली, टूटे

ग्लैडियोली, पत्थर की पंखुड़ियाँ
एक गुलदान में, चारणों के
अतिशयोक्ति युक्त प्रसंशा गीत

रुके हुए। एक किताब
चित्रों की खुलती
स्वयं से, आवाजें

सैंडल्स की गली में।
एक रेंगती सी घड़ी।
काम की लालसा ।
***

प्रेम के बाद प्रेम

समय आएगा
जब, तुम उत्साह से
स्वागत करोगे स्वयं के आगमन का
अपने ही द्वार, स्वयं के आईने में
और दोनों मुस्कराओगे एक दूजे के स्वागत में।

और कहोगे बैठने को। भोजन को।
तुम फिर प्रेम करोगे अजनबी को जो था तुम्हारा आत्म।
मदिरा दो। रोटी दो। वापस दो अपना हृदय
उसी को। उसी अजनबी को जिसने किया था तुम्हें प्रेम।

सारे जीवन, जिसे तुम करते रहे उपेक्षित
किसी और के लिए, और कौन जानता है तुम्हें हृदय से।
बाहर निकालो प्रेम-पत्र अलमारी से,

तस्वीरें, किसी संकट में लिखे गए मसौदे,
छील डालो अपना स्वयं का प्रतिबिंब आईने से।
बैठो। उत्सव मनाओ अपने जीवन का।
***

समुद्री अंगूर

भोर के साथ झुका हुआ वह पाल
ऊबा हुआ सा द्वीपों से,
कैरेबियाई द्वीपों को पीछे छोड़ती दो मस्तूल वाली नाव,

घर की ओर, ओडेसियस
हो शायद ईजियन में अपने घर को जाता हुआ,
पिता और पति की

लालसा, ..कच्चे अंगूरों के नीचे, मानों
व्यभिचारी ने सुना हो नौसिका[1] का नाम
हर समुद्री पक्षी की चीख पुकार में।

इससे किसी को नहीं मिलेगी शांति, प्राचीन युद्ध
सनक और दायित्व के बीच,
कभी नहीं हुआ समाप्त, और रहा है वैसा ही

समुद्री यायावरों के लिए और उनके लिए भी जो
अभी हैं किनारे पर
अपने जूतों में उछलते घर वापसी हेतु,
ट्रॉय की आखिरी लपट बुझी है जब से,

और महाकाय अंधे की चट्टान के वेग से उत्पन्न गर्त
की
निस्सीम गहराइयों से आते
थक चुकी तरंगों के निष्कर्ष।

सांत्वना दे सकते हैं शास्त्रीय ग्रन्थ, पर वह नहीं है
पर्याप्त।

1. *यूनानी पौराणिक कथाओं की एक स्त्री पात्र*

***

नयी दुनिया का नक्शा

मैं द्वीपों का समूह

इस वाक्य के अंत में, शुरू हो जाएगी बारिश
वर्षा के किनारे पर है, एक पाल वाली नाव

धीरे धीरे नाव की दृष्टि से ओझल हो जाएँगे द्वीप;
कुहासे में समा जाएगा एक समूची नस्ल का
विश्वास
बंदरगाहों में।

समाप्त हो गया है दस वर्षीय युद्ध।
भूरे बादलों से हैं हेलेन के केश।
ट्रॉय है श्वेत राख का ढेर
बारिश में भीगते समंदर के किनारे।

बूंदों की रिमझिम तीव्र हो रही वीणा के कसे हुए
तारों सी।
धुंधलाई आँखों वाला एक व्यक्ति उठाता है वर्षा को
और नोच लेता है ओडेसी की प्रथम पंक्ति।
***

अफ्रीका से एकदम भिन्न

हवा का एक झोंका छेड़ रहा है
अफ्रीका की भूरी पीली त्वचा को, किकुयू मक्खियों
सा तेज
मैदान में प्रवाहित रक्त धाराओं पर आमोदरत
बिखरे हुए हैं शव स्वर्ग के चारों ओर।
चीख रहे बस मरे हुए जानवर के माँस में बजबजाते
कीड़े;
“सद्भावना की आवश्यकता नहीं अलग से इन मृत
लोगों को !”

आंकड़े ठहरा देते है हर चीज को तर्कसंगत, और विद्वान
चुन लेते हैं औपनिवेशिक नीति की मुख्य बातें।
बिस्तर में ही काट दिए गए श्वेत बच्चे का क्या ?
राक्षसों के लिए, बलिदान योग्य यहूदियों की भांति।

उत्पीड़कों द्वारा बुरी तरह पीटे गए लोग, टूटता है आक्रमण का सिलसिला,
आइबिस की श्वेत धूल में जिसकी चीखें गूंज रही हैं सभ्यता के उदय से,
सूखी हुई नदी के किनारे या जानवरों से भरे मैदानों में।
जानवर द्वारा जानवर के प्रति की गयी हिंसा है
प्रकृति का नियम, पर न्यायवान मनुष्य
ढूँढता है देवत्व औरों को पीड़ा देकर।
ये चिंतित उन्मत्त जानवर, इनके युद्ध
ढोल के अकड़ चुके शव की धुन पर,
जब वह जुटाता है साहस वही स्थानीय भय
श्वेत शांति का, जो संक्रमित है मृतकों से।

एक बार फिर क्रूर आवश्यकता पोछ रही अपने हाथ
एक घृणित उद्देश्य के रुमाल से, एक बार फिर
व्यर्थ जाएगी हमारी सदाशयता, स्पेन की ही तरह
गुरिल्ला कुश्ती लड़ रहा है सुपर मैन के साथ।
मुझे पिलाया गया है विष दोनों के रक्त का,
शिराओं तक बटा हुआ मैं किस ओर जाऊँ ?
मैं जिसने शाप दिया था
उस पियक्कड़ ब्रिटिश अफसर को जिसने चुनाव किया
अफ्रीका और मेरी प्रिय अंग्रेजी भाषा में ?
दोनों के साथ किया विश्वासघात अथवा वापस किया जो उनसे पाया था ?
मैं कैसे करूँ सामना इस संहार का और रहूँ शांत ?
मैं कैसे जियूँ मुँह मोड़ कर अफ्रीका से।
***

इस रविवार के लिए एक सीख

ग्रीष्म की घास का बढ़ता आलस्य
यहाँ वहाँ नाज़ुक पतंग सी उड़ती तितलियां
प्रशंसा के शीतल पेय की आशा में
मेरे झूले से मधुर छंदों में
और कर्मकांड का कम झंझट
बस जैसे अश्वेत सेविका गुनगुनाते हुए सुखा रही हो कपड़े
किसी प्रोटेस्टेंट होसन्ना के सरल पद
जब से मैं लेटा हूँ भिन्न भिन्न चीजों के विचारों में भटकता।

यही होना चाहिए, जब मैंने सुनी नहीं चीखें
पीली चिड़ियों का शिकार करते दो छोटे बच्चों की,
जिसने तोड़ दिया मेरा व्रत पाप के विचार के साथ।
भाई बहन एक से वस्त्रों में
गंभीर कीटविज्ञानियों की भांति त्योरी चढ़ाये
छोटा चिकित्सक छेद रहा पतली आँखों को,
उकडू बैठी जैसे प्रार्थनारत हो कोई कीट
वह सिसकारियां ले रही उसके पेट से उसकी अतड़ियां निकालते हुए।
सीख वही पुरानी है। नौकरानी हटाती है
दोनों प्रतिभाओं को उनके वैज्ञानिक शौक से,
हरी फ्रॉक वाली लड़की चीखने लगती है

जैसे ही लड़खड़ाती घायल चिड़िया कोशिश करती है उड़ जाने की।
वह खुद है ग्रीष्म के प्रकाश सी
दुबली अगस्त की नीली हवा में खिले फूल सी
चिन्हित नहीं भविष्य के किसी अकथनीय दु:ख के लिए।

मस्तिष्क भय से सिकुड़ जाता है भीतर की ओर
उबकाई सी आती है, हर सामान्य संकेत से।
क्रूरता की आनुवांशिकता है हर जगह,
और हर जगह ग्रीष्म की चिथड़ी हुई फ्रॉक्स,
देखो बहुत पीछे, वहाँ देखने को जहां इस चयन का जन्म हुआ।
जैसे गर्मियों की घास झूमती है हँसिये के आकार के साथ।
***

तूफ़ान के बाद

वहाँ हैं ढेर सारे द्वीप
उतने द्वीप जितने हैं तारे रात्रि में
उस वृक्ष की शाखों पर जहाँ से गिरते हैं धूमकेतु
गिरते फलों की भांति नाव के चारो ओर।
पर चीजों को गिरना चाहिए, और ऐसा था हमेशा से,
एक ओर वीनस और दूसरी ओर मार्स;
गिरो, और एक हो जाओ, जैसे यह पृथ्वी है एक द्वीप, सितारों के द्वीपसमूह में।
मेरा पहला मित्र था समुद्र। अब है मेरा अंतिम।
मैं अब बात बंद करता हूँ। मैं काम करता हूँ, फिर पढ़ता हूँ,
बैठा मस्तूल से लटकी लालटेन के नीचे।
मैं भुलाने की कोशिश करता हूँ कि क्या थी खुशी,
और जब ऐसा हो नहीं पाता, मैं पढ़ता हूँ सितारों को।
कई बार बस मैं होता हूँ और मुलायम झाग
और नाव का तल हो जाता है एक सफेद चाँद
एक बादल को खोलता है किसी दरवाज़े की भांति,
और मेरे ऊपर पड़ता प्रकाश
है एक सड़क जहाँ चाँदनी ले जा रही है मुझे घर।
शाबिन चिड़िया गाती है तुम्हारे लिए समुद्र की गहराइयों से।
***

एक शहर की आग से मौत

उस प्रचंड प्रचार द्वारा, बस चर्च को छोड़, शहर को ध्वस्त कर देने के पश्चात,
मैंने लिखी कथा तेल से, एक शहर की आग से हुई मृत्यु की;
एक मोमबत्ती के नीचे, जो रो रही थी धुएँ के आँसू,
मैं कहना चाहता था, मोम से अधिक, विश्वास के बारे में जिसे नोच दिया गया तारों की भांति।
दिन भर मैं चलता रहा खंडहर हुई कहानियों के बीच,
अचंभित होता हर उस दीवार पर जो खड़ी थी शहर में किसी झूठे की तरह,
आकाश में तेज था चिड़ियों का शोर, और बादलों के गट्ठर थे
चिथड़े हो चुके लूट के कारण, और सफेद, आग के बावजूद।
धुआँ धुआँ समुद्र के किनारे, जहाँ चले थे यीशु, मैं ने पूछा,

किसी मनुष्य को क्यों बहाने चाहिए आँसू, जब गिर रहा हो उसका लकड़ी का संसार?
नगर में, पत्तियां थी, पृष्ठ पर पहाड़ियां थी, विश्वास की संगत में;
एक बालक के लिए, जो चलता रहा है सारा दिन,
हर पत्ती है एक हरित सांस,
पुनर्निमाण प्रेम का, जिसे मैंने सोचा था मृत किसी कील की भांति,
अशीषते मृत्यु को और आग से करने को धर्मशुद्धि।
***

अंधेरा अगस्त

इतनी वर्षा, इतना जीवन इस काले अगस्त के
उमड़े हुए आकाश की भांति। मेरा भाई, सूर्य,
सोचता है अपने पीले कमरे में पर आता नहीं
बाहर।

सब कुछ जा रहा है नर्क में, धुआँ छोड़ रहे पर्वत
किसी केतली की तरह, आप्लावित हैं नदियाँ, फिर भी
वह नहीं उगेगा और नहीं रोकेगा वर्षा को।

वह है अपने कक्ष में, खेलता हुआ पुरानी चीजों से,
मेरी कविताओं से, पलटता हुआ अपनी एलबम के पन्ने। तब भी जब होता है तड़ितपात
जैसे टकराई हों थालियां आसमान में।
****

संपर्क : sbsinghirs@gmail.com

दुबई एक रंगीन सिगरेट की डिब्बी की शक्ल में - गौरव सिंह की दो कविताएँ

गौरव सिंह की कविताएँ महानगरों, अजनबीपन, व्यर्थताओं और ऐसे ही कई-कई बार कहे-लिखे गए प्रसंगों को अपने भावबोध के सहारे अलग और नए तरीक़े से लिखती हैं। बिलकुल नई पीढ़ी के पास बीसवीं सदी के ये प्रसंग और इन्हें कहने की कला है तो आधुनिकता का वह महान विचार भी है, जिस पर मनुष्यता टिकी रही। महामारी के सर्वथा नए प्रश्न को भी कवि उसी विचार की ज़मीन से देखता है।

महानगर

खेत की मेंड़ पर
सुस्ताते किसानों की अधकची नींद में
तमाम महानगर
खौलते तेजाब की तरह
बूँद-बूँद कर गिरते गए....
(या संभवतः गिराए गए...?)

मुझे याद है..
बम्बई पहले-पहल गाँव के

एक नाई की दुकान में
अर्धनग्न नायिकाओं की शक्ल में
दीवार से चिपकी हुई मिली थी...
(गाँव के लड़के बाल कटाते हुए
उसे चोर निगाहों से घण्टों ताका करते...)

दुबई एक रंगीन सिगरेट की डिब्बी की शक्ल में मिली
जिसके ऊपर अरबी अक्षरों में कुछ लिखा हुआ था...

दिल्ली चूँकि बेहद करीब थी
इसीलिए मेरे गाँव से बार-बार टकराती रही
कभी अखबारों के मुख्य पृष्ठ की तरह
कभी जीन्स की किसी पैंट की शक्ल में
कभी दातून पर तंज कसते मंजन की शक्ल में
तो कभी अजीब ढंग से कटे-फटे बालों की सूरत में.. !

मेरे गाँव के पुरुषों को
ये महानगर
जाँघों से लिपटे गुलाबी तौलियों की शक्ल में मिले
औरतों को ये शहर
कभी कम्बलों की शक्ल में मिले
तो कभी आठ खाने वाली मसालदानी की सूरत में..!

मुझे यह भी याद है..
अजीब ढंग से कटे बालों
और
ब्लेड से चीथी हुई पतलूनों का
मेरे गाँव ने पहले-पहल मजाक उड़ाया था

वो अब मेरे गाँव की खोपड़ी
और टाँगों पर
स्थायी निवास बना चुके हैं...

इन दोनों घटनाओं के बीच
एक इतिहास है..
जिसके मटमैले पन्नों पर
मेरे गाँव के खून के छींटे बिखरे हैं..!
***

और विकल्प ही क्या है..?

यह जानते हुए कि-
महामारी और दुर्भिक्षों के
अनुभवों से लबरेज
हर पिछली सदी से मिलीं
तमाम उम्मीदें और आश्वासन
अगली सदी में झूठी साबित हुईं हैं. ..
(कि पीड़ा का ये अंतिम पड़ाव है
या अगली सदी इससे सुंदर होगी..)

अपने बस्तों में
बचाव के सामान रखकर
महामारी से भरी इस सदी में
बेहतर वक्त की दिशा में
हम दूरी के नियमों का
पालन करते हुए चले जा रहे हैं...

किसी सार्वजनिक सतह पर
अनजाने में हाथ छू जाने के डर के साथ!
नन्हे शिशु को देख
मन में उमड़ रहे वात्सल्य को

शत्रु के भय से अंदर ही दबाते हुए!
महामारी के बाहर होने का अंदेशा लिए
अपनी खिड़की से दुनिया को निहारते हुए!
और हर सुंदरता के ओट में
शत्रु के छिपे होने की आशंका लिए..
हम काँपते कदमों के साथ बढ़ रहे हैं
इस सदी से उस सदी की ओर...!

कोई उनसे नहीं पूछ रहा यह प्रश्न
कि आखिर कब तक जिएँगे हम
इतनी महामारियों के बीच?
मेरे लोगों के पास
हर प्रश्न का एक ही उत्तर है-
" और विकल्प ही क्या है..?"
***

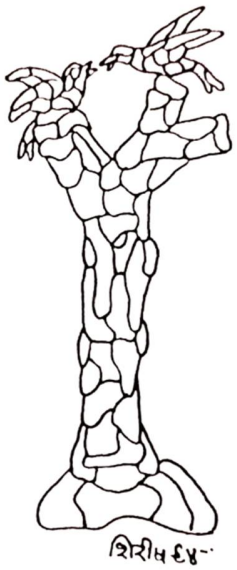

एक उड़ती हुई चिड़िया की ओर - नेहल शाह की कविताएं

हिन्दी कविताओं में इधर बीच सामने आई संभावनाओं में नेहल साह की कविताओं में अस्मिता से जुड़े प्रश्नों के स्पष्ट स्वर दिखाई देते हैं। अनुनाद पर यह उनका प्रथम प्रकाशन है,कवि का यहाँ स्वागत
है।
***

अतियथार्थ

यह तकरीबन आधी रात की बात है,
मैं उस वक़्त नींद में कविताएं लिखती हूँ।

मैंने देखा
जगह-जगह के छोटे छेदों से,

स्त्रियाँ निकल रहीं हैं, कॉकरोच बन कर।
लोग उनके पीछे भाग रहे हैं।
कोई उन्हें चप्पल से मार रहा है,
कोई उन्हें ज़बरदस्ती पकड़ने की कोशिश कर रहा है
,
तो कोई धर दबोचने में कामयाब हो गया है।
कोई उन्हें तरकीब से पीठ के बल लिटा देना चाहता
है।
एक बार इस तरह चित्त हो जाने पर वे पलट नहीं
पाती,
और दम तोड़ देती हैं।
कुछ तो बस उन्हें देखते ही मार देना चाहते थे, कु
छ सुंघा कर,
किन्तु, वे निकलती जा रहीं थीं,
अंतहीन स्त्रियाँ,
पनपती जा रही थी,
गटर में,
जो उनका जीवन है।
कॉकरोचों से किसी को कोई हमदर्दी नहीं थी,
स्वप्न में भी नहीं,
इससे किसी के कल्चर्ड होने का भी कोई संबंध नहीं
था।
कॉकरोच के संदर्भ में सब लगभग एक ही तरह सो
च रहे थे
उनके घरों के कॉकरोच को ठिकाने लगाने के उनके
अपने उपाय थे।
मैंने पहले कभी देखा था कि कॉकरोच कुछ दूर उड़
सकते हैं।
किन्तु स्त्रियों के रूप में वे अपना यह गुण भी खो च
ले थे।
जैसे ही सुबह होने लगी तो कॉकरोच पुनः स्त्रियों में
तब्दील होने लगे,
मैं घबरा गई।
कुछ भी न लिख सकी।
नींद से जाग गई।
खुद को शीशे में देखा,
तो सिर पर दो एंटीने,
और पीठ पर दो बेजान से पंख लगे थे।
***

गहराई

प्रकाश फैलता है,
यात्रा करता है दूर तक
किंतु!
अंधकार ठहर जाता है,
गहरा होता जाता है,
एक के ऊपर एक सतह बनाता हुआ
किसी गहरे रंग की तरह,
जो हर कोट के बाद एक शेड गहरा जाता है।

उसी गहराई में देखती है वह खुद को,
जहाँ अंधकार की कई पर्तों के नीचे
दबा हुआ जीवन कई दफा मृत्यु सा जान पड़ता है,
उसी काली खोह में वह अंदाज़ से
टटोल कर ढूंढ लेती है कुछ पल जीवन के,
आज भर के जीने के लिए,

ठीक उसी तरह जिस तरह निचोड़ लेता था
वह रंग आज भर की पेंटिंग के लिए।
क्या नाम था उसका?
हाँ विन्सेन्ट कहते थे उसे।

सितारों से भरी विक्षुब्ध रात!
विक्षुब्ध जीवन!

गहरे नीले रंग का वेगमयी आकाश,
गहरी तरंगे खुद में सिमटती हुई,
भँवर की तरह,
जो उसके हृदय से उठा था,
और उठा था विरजीनिया के हृदय से,
किसी कमरे और किताबों की तलाश के चलते,
और ले गया उसे अपनी गहराई में।
क्या किसी ने सुनी थी उस रात पानी की चीख..?
***

श्वेत-सत्य

किसी एक सत्य की तलाश में
मैं न जाने कितने सत्य,
अनदेखे, अनसुने करती रही।
भरी धूप में

अपने पूरे तन पर कालिख पोत
काले वस्त्र पहन कर
किसी काली छाया सी चलती
वह विक्षिप्त औरत भी एक सच है,
मुझे उसकी तलाश नहीं थी,
कभी नहीं,

किन्तु, रोज मिलती है वह मुझे,
किसी अलग सत्य की तरह,
किसी मुरझाये फूल की तरह,
किसी पेड़ से अलग हुए पत्ते की तरह,
किसी अपने से बिछड़े हुए की तरह,
किसी बिन आत्मा की देह की तरह,
किसी झूठ के आवरण में उस सत्य की तरह,
जिसे मैंने कभी देखना नहीं चाहा,

न देखना चाहा उसके काले रंग को
अपनी कल्पनाओं के किसी
श्वेत-सत्य की संभावनाओं को
तलाशती मैं, इस प्रकृति
की अनंतता को उपेक्षित करती रही
भूल कर कि मेरी सोच के परे
कई सत्य हैं,
जो केवल सत्य हैं।
***

कर्ण

हे कर्ण!
मुझे सहानुभूति है तुमसे।
मुझे पता है
तुम्हें गुरेज़ है
एक स्त्री की सहानुभूति से
किन्तु!
तुम्हारे प्रति
मेरी यह भावना
अकारण नहीं।
क्या तुम्हें आभास है,
कि तुम्हारी लौह काया में
बसे हृदय में
सदैव स्त्री ने वास किया।
कितना विचित्र है,
सूर्य पुत्र के हृदय में

रात्रि का वास
बादलों का वास,
खुले काले लंबे घने केसों का वास।
मोह का वास,
माया का वास,
अधूरी ममता का वास।
सच मुझे सहानुभूति है तुमसे,
किन्तु मैं ये भी जानती हूँ
कि तुम प्रेम चाहते थे,
एक स्त्री से,
पर माँग न सके,
तुम्हारा दानवीर होना आड़े आया,
तुम समझ न सके
स्त्री को
प्रेम देना ही प्रेम पाना है,
तुमने क्षत्रिय काया में
शुद्र मन स्थापित किया
किन्तु कहीं ये भूल गए
कि आत्मा इस विभाजन से परे है।

हे कर्ण
मुझे सहानुभूति तुमसे
इसलिए भी है
कि तुम मित्र तो बने किन्तु
मित्रता चुकाते रहे,
अपने लहू की हर बूंद से,
और हस्तिनापुर के एक मात्र
योग्य उत्तराधिकारी की संभावनाएं भी
अपने साथ कुरुक्षेत्र से ले गए
जिस क्रूरता से ले जाता है झंझावात
दीपक की लौ को उड़ाकर,
एक ही झटके में,
और मैं देखती रही तुम्हें दूर से,
कभी राधा और कुंती बनकर
कभी द्रौपदी बनकर,
और कभी तुम्हारे हृदय में छुपी स्त्री बन कर
सदैव सहानुभूति देती रही,
अब भी दे रही।

ये जानते हुए भी,
कि गुरेज़ है तुम्हें
एक स्त्री की सहानुभूति से।
***

लिबास

तुम नहीं चाहते न,
कि वह देखे स्वयं को
दिन के उजाले में।
उसे,
तुमने लिबास में ढँक दिया।
कभी बदरंग,
कभी काले,
कभी सफेद
और न जाने कइयों रंग के,
सिर से लेकर पैर तक।

अभी-अभी उन्होंने
किसी की मृत देह दफन की
कब्र में।
मिट्टी की इतनी तहें,
कि किसी साँस को अनुमति नहीं
भीतर जाने की।

सोचा है कभी,
कैसा जीती होगी उसकी
आत्मा, इतनी तहों के भीतर?

सुनो न! कमल के
असंख्य पत्तों के नीचे छिपे
पानी की ध्वनि को,
कितनी, तरल, सरल, सौम्य है।

वो देखो उन्हें
वे उसे नसीहतें दे रहे हैं,
सलीका सिखा रहे हैं
दुनिया में रहने का।

वह चिड़िया
उस पुराने पेड़ की खोह में
भटक गई है।
छटपटा रही है वह
बाहर आने को।

अरे ये अंधकार,
कहाँ गया उसका लिबास?
किसने छीन लिया?

देखो न!
यह अंधकार
जैसे मनुष्य के मन
की नग्नता ढँक देता है।

अरे!
कितने थेगड़े लग
उसके लिबास पर
बड़ी सफाई से,
सभी सुराख सी दिए गए।
तुम डर गए
है न?
तुम डरे!
कि उसके लिबास के
सुराख देख न ले रोशनी,
कहीं कोई चैन की साँस ले,
स्वच्छंद न हो जाये वह।

कभी देखी है ऐसी कोई गुफा
जिसके झरोखे से
सूरज यूँ झांकता है कि मानो
रात वही रुककर आराम करता रहा हो।

तुम्हारे लिए
वह एक लिबास है
अंधकार से बुना हुआ,
जो ढँक देती है,
तुम्हारे हर संताप को।

अच्छा सच कहो!
क्या तुम्हें आत्मा की समझ है?
और यह भी कहो!
क्या तुम्हारी आत्मा का भी कोई लिबास है?
***

वे तीन चिड़िया (चेखव की थ्री सिस्टर्स प्ले पर आधारित)

वे तीन चिड़िया,
अलग-अलग पिंजरे में बंद,
देखती हैं एक दूसरे की ओर,
दुःख से भरी,
कभी स्वयं के,
कभी एक दूसरे के।

वे देखती हैं दूर तक,
पिंजरे के बाहर,
अनेक रंगों से सजी हुई पृथ्वी,
और देखती हैं वे
दूर स्वच्छ नीला आकाश।

उनके मन की आकुलता
दिखती है
उनके फड़फड़ाते पंखों में,
जो टूटते हैं
कई बार,
उड़ने की होड़ में।

वे देखती हैं मुक्ति की आस से
एक उड़ती हुई चिड़िया की ओर,
जो कुछ ही क्षण में
आ बैठती है,
उनके ही वृक्ष पर,
ढँक कर स्वयं को आवरण से।

वे रोकना चाहती हैं उसे,
हटाना चाहती हैं उसका आवरण,
देखना चाहती हैं मुक्त उसे,
स्वयं के साथ।

अब वे देखती हैं
अपने मन के दुःख की छाया,
अपने पास पड़ी पृथ्वी के चेहरे पर
और दुःख,
बहते हुए पृथ्वी की आँखों से,
महसूस करती हैं
आँसुओं की गर्म आँच से,
अपने आस पास
दिन और रात झुलसते हुए,
वे लौट आती हैं
अपने ही मन के भीतर के शांत कोने में,
टटोल कर दुःख के कुछ शांत क्षण
बैठ जाती हैं पंख पसार कर
कभी न उड़ने के लिए।
***

हमीदा बी

वे बहुत पुरानी थीं,
आज़ादी की आखरी लड़ाई से भी अधिक पुरानी,
और साँस की मरीज़ भी
कई वर्षों से,
या यूँ कहें कि हो गई थीं,
गैस त्रासदी के बाद,
और मरीज़ों जैसी।

पर्याप्त हवा होने पर भी
अपनी साँस न जोड़ पाना,
दुःखद है
और विचित्र भी।

किन्तु उनके चेहरे पर सुकून था,
इतना, जितना की मृत देह के चेहरे पर होता है।

मुझे तकलीफ में उनका इतना सुकून
असहज कर देता।

तक़लीफ़ बढ़ने पर
उन्हें आई सी यू ले जाया गया
कुछ बे-भान सी हो गईं थीं वे,
किन्तु उन्हें सब याद था।

होश में आते ही बोलीं
"उन्होंने मेरे हाथ बांध दिए थे
(मरीज़ नींद या बेहोशी में कोई नली न खींच ले इ
सलिए ऐसा करना पड़ता है)।
सच!
मैंने कोई गुनाह नहीं किया,
फिर भी मेरे हाथ बांध दिए।"
उन्हें उनके हाथ बांधना दुःखद लगा,
साँस न ले पाने से भे ज्यादा दुःखद।
मुझे भी!
वे दिन में कई बार हाथ उठा कर,
अल्लाह से अपने उन गुनाहों की माफी मांगती थीं,
जो उन्होंने कभी किये ही नहीं।

मुझे आश्चर्य हुआ कि उन्हें हर बात का होश है,
बस वे साँस नहीं ले पा रहीं थी अपनी।

वे ऑक्सीजन सपोर्ट पर थीं,
मैं उन्हें साँस लेने का सलीका सिखा रही थी,
वे बिस्मिल्लाह! करते हुए हर सांस लेती जा रही थी
,
और सुकून से मुस्कराती जा रही थी।

मैंने उनके घर का पूछा तो बोलीं-
"मैं उस मोहल्ले में रहती थी जहाँ एक सिपाही को
गोली मार दी थी,
पहले गैस रिसी,
फिर दंगे हुए,
मेरा घर बिक गया।"

परिवार पूछने पर-
अपने शौहर पर झुँझला कर बोलीं-
"वे इतने पहले अल्लाह को प्यारे हो गए,
कि अब हमें बिनका चेहरा तक याद नहीं,
एक बेटी का इंतेक़ाल हो गया,
एक बेटा बानवे के दंगों से लापता है,
उन्हीं दंगो में बहू का हाथ काट दिया गया।"
बगल में खड़ी बहु झट से कटा हाथ दिखा देती है।
वे उसी के साथ रहने लगीं।

मैंने असहज होते हुये लंबी सांस ली,
पर साँस ठीक से नहीं आई,
मैंने फिर कोशिश की
उस सलीके से साँस लेने की जो मैं उन्हें सिखा रही
थी।
मैं कुछ बेहतर हुई,
लंबी गहरी साँस लेते हुए,
उन्हें फिर सिखाने लगी,
साँस लेने का सलीका।

वे हर साँस से पहले बिस्मिल्लाह! करतीं,
साँस लेतीं,
और उसी सुकून से मुस्कराती।
***

nehalravirajshah@gmail.com

बारहों ऋतुओं में ठहरा तुम्हारा स्पर्श - गीता गैरोला की कविताएँ

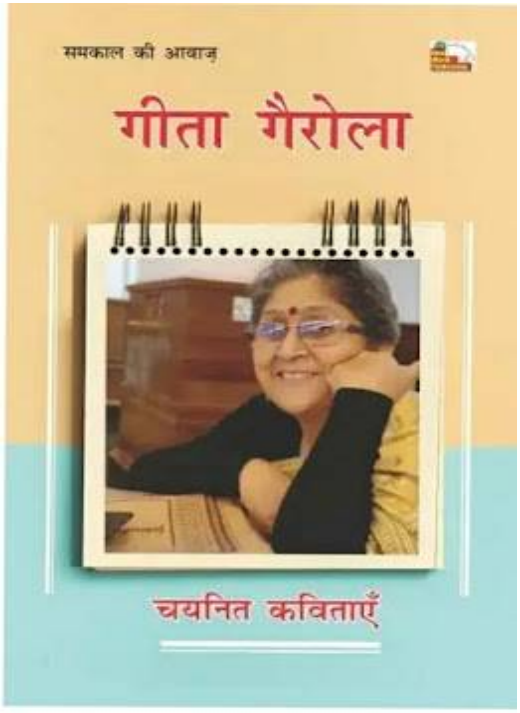

गीता गैरोला प्रख्यात सामाजिक कार्यकर्ता हैं। महिला समाख्या में कार्य करते हुए उन्होंने साधारण भारतीय स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का बहुत निकटता से अनुसंधान किया, लेकिन गीता गैरोला का कार्य स्त्री तक सीमित नहीं है। वे समाज, देश और दुनिया में मनुष्यता के लिए विकल रहने और साधारण मनुष्य के अधिकारों के लिए सड़क पर दिखाई देने वाली स्त्री हैं।

गीता गैरोला अपने यथार्थ को लिखती भी हैं। उनके संस्मरणात्मक गद्य की एक महत्वपूर्ण पुस्तक कुछ समय पहले प्रकाश में आयी थी। वे कुछ समय पूर्व गम्भीर रूप से अस्वस्थ भी रहीं और उन दिनों का दस्तावेज़ सम्भावना प्रकाशन हापुड़ से छप कर आ रहा है।

एक महत्वपूर्ण पुस्तक उनकी कविताओं की शीघ्र ही प्रकाश में आने को है! 'समकाल की आवाज़' श्रृंखला में प्रकाशित होने जा रहे इसी संग्रह से उनकी कुछ कविताएँ अनुनाद के पाठकों के लिए।

***

शेष

यहीं डोल रही है
तुम्हारी खुशबू से गमकती हवा
हाथी पर्वत की चोटियां और
नृसिंह मंदिर का फलक
बर्फ की पारदर्शी चादर से
ढक गया है
सर्दीली हवा से कांच की खिड़की
के अधखुले पट हिल रहे हैं
चीड़ और देवदार की चटकती
लकड़ी की निर्झर महक से
मन की गहन गुफाएं
रसमग्न हैं
आकाश तत्परता से छह ऋतुओं को
अपनी अंगुलियों में फेर रहा है
उत्तर से अष्ट मुखी शंख
अशेष रह गए स्पर्शों के अदृश्य आलापों को
स्वर लहरियों में फूंक रहा है
आकाश है बर्फ है
पानी है पेड़ है
बारहों ऋतुओं में ठहरा
तुम्हारा स्पर्श
शेष रह गया है

***

तुम्हारा नाम

काले घने नैनी पर झुके बादलों से
स्वाती नक्षत्र में निकली और ठहर गई
पहली बूंद तुम्हारे लिए
बर्फ की सफेदी के बीच
खिला इक्का दुक्का बुरांश की
लाल बर्फ में तैरती पंखुरिया
तुम्हारे नाम
ताजी बर्फ के ऊपर मध्यमा से लिखा
तुम्हारा बिना लिखा नाम गूंजने लगा
आसमान के मौन में घिर आए मौसम की
ठिठुरन तुम्हारे नाम
खिड़की की कांच पर जमी भाप पर
तर्जनी से लिखा तुम्हारा नाम
भाप के साथ हवा में बिखर गया
कोहरे से ढकी नैनी में तैरते बत्तखों के जोड़े ने
चोंच मिला कर चुम्बन लिया
नैनी की अथाह गहराई में
कौन जन्मा होगा
तुम्हारे नाम के साथ
शेर के डांडे से हटे बादलों के बीच
नीले टुकड़े से झांकती पूर्ण चंद्र की
सीढ़ियों पर प्रतीक्षा रत उजली हंसी
भोर के तारों को नक्षत्रों से उतार लाती है
तुम्हारे नाम के साथ लिखती है
आसमान उजास बर्फ और
नैनी के विस्तृत वक्षस्थल पर तैरती
बत्तखों की एक जोड़ी
***

वैदेही

देह में रह कर विदेह होना
स्त्री-सूत्र है हृदय का
इसका विस्तार अनंत आकाश तक है
देह के अंतर से
देह के अंतरस्थ तक
विस्तृत मुखर मौन में
व्याप्त
जीवन मृत्यु के राग में
छह ऋतुओं के बारह मौसम
शेष होते हैं
अनंत दिगंत तक
निशेष होते हुए
गोधूली बेला के आगमन में
बहती मंद पवन के साथ
अशेष हो जाना
वैदेही
***

बैरागी-सी

दुआएं दी और शाप भी
दीप जलाए मंदिर के अंधेरे कोनों में
जीवन बना लिया
रात्रि के सूर्य को
मृत्यु से छांव दी
बरसते रेगिस्तान से
सरदीली हवाएं आती रही
शमशान की चिता से
मौन के स्वर उठे
मृत्यु से जीवन सांसे आने लगी

बैराग से राग जागा
अंधकार से जला दीप
उड़ते जल से मुक्ति हुई
अंत के अंदर से अनंत निकाला
सातों इच्छाओं की स्मृति से
निकाला मलय पवन
भ्रमर के पंखों से लिया पराग
पाताल लोक तक झुकाया ब्रह्मांड
समय के एकांत में घूमती
मै
प्रेम राग की बैरागी
***

घर

लाल छत वाला
जिसकी खिड़कियां खुलती हों
घने बांज के जंगल में
गुच्छे बुरांस के
आनंद से देहरी पर झूमते हों
हवाएं आराम करती हों
आकाश के दाह में
पृथ्वी के एक छोर पर
हिम जल से भरा गदेरा आकुलता से बहता हो
धूप को चुराने को
बारिश से लिखें प्रेम
किताबों से भरा हो एक कमरा
जिसमे लिपटा हो समय
किसी उजले कोने की जमीन पर
बिछा हो एक बिस्तर
जो मन के कोलाहल को मौन से जोड़ दे
दरवाजों पर स्वप्न खड़े हो
बसंत मालती की महक लिए
रसोई के किनारों पर ठहरी हो मेरे नाम की बूंद
बेपरवाह पत्तियां करवटें बदलती रहे
दूर सामने वाले खेत में फूलो से भरा रहे पदम वृक्ष
उसकी छाया में मेरी सुबहें कोमल ऋषभ में
गाती रहे राग भैरव
दूर अनंत से एक फाख्ता किताबों के मध्य
सेवती रहे अपनी आने वाली संतति
और बसंत अपनी नमी को सहेज कर
बेपरवाह नंगे पैरों से चलती जिंदगी को
एक दरवेश की तरह सहलाता रहे
घर की देह में
एक घर बनाना था
***

मेरे आँगन में बसंत

बसंत
तुम लौट के आना
जैसे आते हो हर बार
आंगन के केंद्र में
एक स्वप्न पड़ा है भुरभुरी मिट्टी के बीच
चुपके से उतरना एक शाम
बांसुरी में भरे मालकौंस
मन की सोलह ऋतुओं में उतरना
गिराना प्रेम की सोलह बूंदे
जब तुम कहोगे
मै दसों दिशाओं की आकुलता लिए
दरवाजे पर गिरा हूं
तुम्हारी आश्वस्ति में
तुम्हे लेने आया हूं
मेरे हृदय वास में

पतझड़ के साथ वसंत रहता है
विदाई ही मेरा मिलन स्थल है
तुम केंद्र को देखना
एक स्वप्न रखा है
चुपके से छूना
कोमल पत्तियां प्रतीक्षा रत
***

पुकारो

पृथ्वी पर
पर सोलह कलाओं से
परिपूर्ण चांद रात है
मीत मेरे
वृष्टिजल से सिंचित देह
अर्द्ध मूर्च्छाओं में है
लौकिक आलौकिक पोटली की
  ध्वनियां अचेत है
अनात्म प्राण
छोड़ता है सुगंध
आठोत्तरी के एक सौ आठ दाने
ब्रह्मांड से छिटके नक्षत्रों की तरह
अपनी उद्दाम इच्छाशक्ति से
अविच्छिन्न
अंगुलियों की पोरों पर थिरक रहे है
ओ अनाम
इस अचेतन को
पृथ्वी के अंतिम सिरे से
पुकारो
***

पेड़ और पत्तों की रज़ामन्दी से आता है पतझड़ - राही डूमरचीर की कविताएँ

हिन्दी कविता में इधर सामने आयी संभावनाओं में राही डूमरचीर ने तेज़ी से अपनी पहचान बनाई है। देश के उपेक्षित इलाक़ों, नागरिकता और अस्मिताओं की बहुत स्पष्ट उपस्थिति अब कविताओं में हैं। राही ऐसी ही कविताओं के मुखर कवि हैं, जो किसी दायरे में नहीं बंधतीं, अपने मूल स्वर के साथ एक अधिक विस्तृत धरती की यात्रा करती हैं।
***

बच्चे

(एक)
आधी रात को
आ रही गाड़ियों की तीखी आवाज़ से
जाग जाते हैं बच्चे

दूर देशों से आतीं ये आवाज़ें हमें सुनाई नहीं देतीं
हम सिमट चुके होते हैं

एक देश, एक जाति, एक परिवार
और आख़िरकार अपने आप में

इसलिए हम डूबते सूरज को देख
दुनिया के लिए उसे रात मान लेते हैं
जब तक कि न्यूयार्क-लंदन का समय बताने वाली घड़ी
हमारे घरों में सामने टंगी नहीं होती
दुनिया जागती रहती है का सामान्य ज्ञान
हम सुविधानुसार अर्जित करते हैं

बच्चे जाग जाते हैं
दूर देशों से आ रही
गाड़ियों की तीख़ी आवाज़ों से
रोने लगते हैं रोते हुए लोगों की बाढ़ देख
हँसते हैं उन्हीं रोतों का उत्साह देख
पहाड़ियों से आती हवाओं से झपकी आने लगती है उन्हें
समंदर गर्म होने से पहले अपने दोलने पर जी भर सुलाता है उन्हें

बच्चे बड़े होते जाते हैं
दुनिया से कटते जाते हैं
अपनों को ठीक से पहचानते
अपनों में गुम हो जाते हैं
सदियों से जो अपने हैं उनसे दूर हो जाते हैं

(दो)
बच्चे अक्सर पहन लेते हैं
उल्टी चप्पलें
पास ही कोई बुज़ुर्ग
चप्पलों को सीधा पहनने की
हिदायत देता मौजूद होता है उसी क्षण
साथ ही
बताया जाता है पूरे तजुर्बे से-
गिर सकते हो, चोट लग सकती है गहरी
बच्चे नहीं छोड़ते
चप्पलें उल्टी पहनना
उन्हें फ़िक्र नहीं होती गिरने की
चप्पल के दायें
या जूता के बाएं हो जाने की
धीरे-धीरे बड़े होते हैं बच्चे
छोड़ देते हैं चप्पलें उल्टी पहनना
वे भी सीखते हैं बात-बेबात नसीहतें देना
डपटकर अपनी बात कहना
बड़े हो गए बच्चे
फिर कभी नहीं पहनते चप्पलें उल्टी
चप्पलों की अदला-बदली से
पाँव नहीं उलझते कभी
इस वजह से गिरते भी नहीं कभी
वे गिरते हैं
सीधे पहने जूतों के बावजूद
बच्चे गिर-गिर कर
चलना सीखते रहते हैं
बड़े क़रीने से
गिरना सीख जाते हैं
***

दुखों का मौसम नहीं है पतझड़

हाड़ाम बा कहने लगे-
तुम हमेशा अधूरी बात सुनते हो
पतझड़ को तुमने भी अपनी कविता में
दुःख लिख दिया है

पतझड़ दुखों का मौसम नहीं है
मुरझाए हुए मन का प्रतीक तो बिल्कुल नहीं
दिन रात चलते रहने वाले
अनवरत संगीत के इस मौसम में
अपना जीवन जी चुके पत्ते
'नयों को भेजो दुनिया देखने
हम तुम्हारी नींव में समाते हैं'- गाते हुए
अपनी धरती से मिलने आते हैं

पतझड़ में पेड़
दुःख नहीं मनाते
न ही दुःख में डूबते-गलते
डालों से टूटकर गिरते हैं पत्ते
वे तो सोहराय* में नाचते-गाते
अपने लोगों से बाहा परब** में मिलने आते हैं

इसी से है
हमारे बार-बार वापस लौटने का रिवाज
भूत नहीं बनते हमारे लोग
इस दुनिया से जाकर
वे साथ होते हैं हर मौक़े पर
हँड़िया का पहला दोना भी पुरखे ही चखते हैं

पेड़ और पत्तों की रज़ामन्दी से आता है पतझड़
वरना लू की लहक भी हरे पत्तों को कहाँ झुलसा पाती है
बढ़ती धूप के साथ और हरे होते जाते हैं पत्ते

***

***सोहराय**-संताल आदिवासियों का त्यौहार जो मकर संक्रांति के आस-पास शुरू होता है और लगभग एक महीने तक अलग-अलग गाँव इसे अपनी सुविधा के अनुसार मनाते हैं

****बाहा परब** – बसंत में होली के आस-पास मनाया जाने वाला त्यौहार

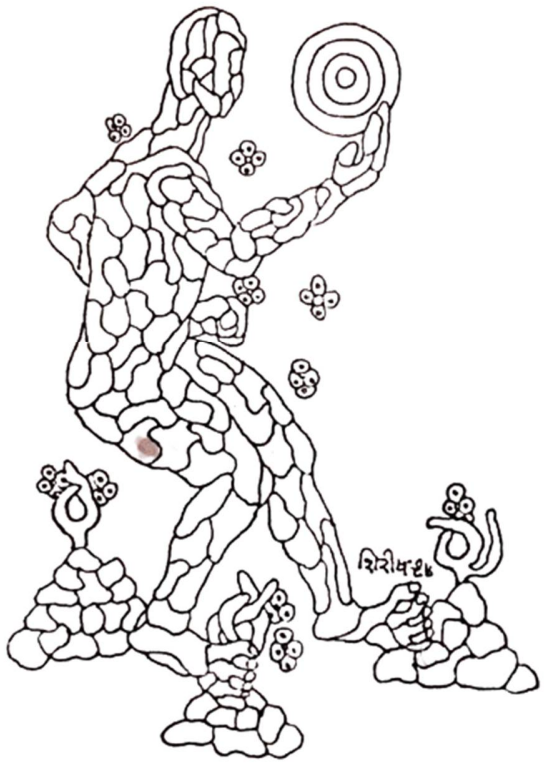

ईश्वर को प्राप्त है हर चीज़ की आड़ - योगेश ध्यानी की कविताएँ

योगेश ध्यानी की कविताएँ समकालीन हिन्दी कविता में बिलकुल नया एक बयान हैं। नया होने के बावजूद वे किसी असाधारण शिल्प और भाषा में नहीं, बल्कि साधारण जीवन और जन की बेहद मामूली, लेकिन अनिवार्य कहन की तरह साथ आती हैं। इन कविताओं में एक निरन्तर नैरेशन है, जीवन है सामान्य कार्य-व्यापार में बंधा और एक आकांक्षा है, उसे कह देने की।

***

यह और बात है

हल्के दिखने वाले कुछ अपराध बोध
इतने भारी हो जाते हैं
कि उम्र भर नही हिलते
जैसे एक बिल्ली थी काली
जो लचक कर पार कर रही थी सड़क
अपनी धीमी कराह के साथ

मै उसे देख कर मुड़ा
और दूसरे रास्ते से गुज़र गया
पता नही वह दूसरे किनारे
किसी कोने मे छुपाये
अपने दुधमुहों तक पंहुची भी या नही

कैसी है हमारी मति
एक भ्रान्ति पा जाती है तरजीह
एक जायज़ कराह के बनिस्पत
इस घटना की स्मृति से उपजी
अपनी बेचैनी से निजात पाने के लिए
मैं कोसता हूँ उस व्यक्ति को
जिसने करार दिया था
बिल्ली के रास्ता काटने को अपशकुन

यह और बात है
कि मै आज भी बदल लेता हूँ अपना रास्ता
बिल्ली को देखकर ....।

***

सूक्तियाँ पूर्ण सत्य नहीं होती

सूक्तियां पूर्ण सत्य नही होती

वे रहती हैं
देश- काल- समाज-परिस्थिति जैसी
किसी न किसी शर्त की आड़ मे
आड़ को पूरी तरह से नही हटाया जा सकता

ईश्वर को प्राप्त है हर चीज़ की आड़
यदि तुम उसे इस लोक से विस्थापित भी मान लो
तो कोई कह देगा
वह है आकाश के उस पार
तुम आकाश को कैसे हटाओगे
सत्य के सबसे करीब होती है वह बात
जिसे खुद के समर्थन के लिए
सबसे कम आड़ की ज़रूरत हो
भूख सबसे करीब है सत्य के
खुद को स्थापित करने के लिए
उसे सिर्फ इतना कहना है
"यदि जीवन है तो मैं भी हूंगी।"
***

ऐसा क्या है उसमें

ऐसा क्या है उसमें जो उसे औरों से अलग करता है ?
उसके दो कान हैं
जो किसी गमछे या टोपी से ढके नही रहते
वह कभी बालों को इतना बड़ा नही होने देता
कि उसके कान दिखना बंद हो जाएं
उसको कभी किसी ने हेड फोन लगाये हुए नही देखा
वो मोबाइल पर स्पीकर ऑन करके करता है बात
उसका एक मुख है

जो बहुत कम खुलता है
चेहरा बात-बेबात हिलता ही रहता है
कुछ भी कहे जाने के तुरन्त बाद,
हिलने की कोई स्पष्ट दिशा नही है
कुछ- कुछ ऊपर-नीचे और कुछ दांए-बांए भी
उससे कुछ कह रहा आदमी
उसके हिलते सिर को देखकर यकीन से नही कह सकता
कि वह हामी मे हिला या नकार मे
यदि मै उससे चाय मांगता तो चाय मांगने के बाद
उसका हिलता हुआ सिर देखकर समझ नही पाता
कि उसने सुना या नही
चाय हाथ मे आने के बाद समझता
कि उसका सिर हां मे हिला था
लोग आते चाय मांगते
और चाय से थोड़ा पहले और थोड़ा बाद तक
अपनी बात कहते रहते

बातों को हिलता हुआ एक सिर देखकर
बढ़ते जाने का मन होता और वो बढ़ती जातीं
इधर चाय खौलती और कपों मे गिरकर बिकती जाती
जो अपना समर्थन चाहते थे
उन्हे उसका मुह हां मे हिलता दिखता
जो इस आदत से परेशान थे कि कुछ कह लेने के बाद पूछते
"तुम्ही कहो ग़लत कह रहा हूँ क्या?"
उन्हे उसका सिर न मे हिलता दिखता
उसके पास कोई खुफिया बूटी नही थी
जिससे चाय मे आ जाता था नशा
उसके पास उसकी काबिलियत के नाम पर

सिर्फ उसका सुनना था

मोहल्ले भर के सन्तोषी-असन्तोषी संपन्न और
लाचार लोग
उसके बारे मे इतना भर कहते थे
हमारी बात सुन लेता है
ये क्या कम है .....।
***

ऐसे ही लिखा है अंत

ऐसे ही लिखा है अन्त
घिरते अन्धकार मे
किसी चातक की नुकीली चोंच से
अन्तिम शब्द न उचार पाने की खीझ के बीच
उनका आभार न प्रकट कर पाने के रोष के साथ
जो मृत्यु के बाद प्रकट करेंगे शोक
रखेंगे मौन
जबकि मैं यह बोलने के लिए फड़फड़ा रहा हूंगा
कि मैं उनसे सहानुभूति रखता हूँ
चाय की प्यालियां जो बांटी जा रही होंगी
शोक सभा मे आगन्तुकों के बीच
उठाने के प्रयास मे मेरे हाथ से फिसल जाएंगी
और मैं चाय की तलब मे भटक रहा हूंगा
रेल जहाँ रुक जाती है अन्ततः
पटरी के बीचों बीच बड़े से क्रॉस को देखकर
मैं उतरकर उस क्रॉस के पार चला जाउंगा
दैवीय हो जाऊंगा
लेकिन मेरे दुख
चाय की तलब लगने पर चाय न मिलने
पसन्द की पुस्तक न पढ़ पाने
और तुमसे मन की बात न कह पाने जितने आम
होंगे
मुझे दैवीय नही होना
मृत्यु के बाद भी मैं याद किया जाना चाहूंगा ऐसे ही
कि एक आदमी था जो कलम रखता था जेब मे
कुर्ते पहनता था देखा-देखी
कतराता था बोलने से
अपने लिखे को कविता जैसा समझता था कुछ
पर बेचारा कवि नही हो सका ताउम्र.....।
***

वह स्वप्न के साकार होने का बिंदु है

तुम्हें यदि जरा भी भ्रम है
कि आस-पास है वह
तो पुकारो उसे
लगातार
तुम्हारी हज़ार पुकारों मे से
किसी एक पुकार के हजारवें अंश की गूंज
उस तक पंहुचेगी
उसके लिए उस गूंज के हजार अर्थ होंगे
एक-एक कर सारे अर्थों को खारिज करते हुए
वह उस अर्थ पर पंहुचेगा
जिसमे उस गूंज के पीछे तुम्हारे होने का भ्रम हो
यह दुनिया भ्रमों का अम्बार है
सबसे सुन्दर है वह जगह
जहां दो लोगों के बिल्कुल अपरिचित भ्रमों के चेहरे
एक दूसरे से मिलने लगते हैं
वह स्वप्न के साकार होने का बिन्दु है
हम सब जीवन के इस विराट वृत्त में
उसी एक छोटे से बिन्दु को ढूंढ रहे हैं।
***

कहो खजांची

कहो खजांची खातों मे हुआ कितने का लेन देन
कितने आये नोट कितने गये
सब ठीक ठाक तो रहा,
दूसरों के नोटो के बीच तुम पी सके
तीन बजे की अपनी चाय ?
कितने नही चुका सके लोन की किश्त,
जिनकी पेंशन नही पंहुची
उनके घर हो सका क्या रोटी का बन्दोबस्त
खैर जाने दो, यह कहो
तीन बजे की चाय मे ठीक थी न शक्कर
कितनों ने निकाला बचायी हुई रकम से हिस्सा
कितने सेठों ने जमा करवाई रोज़ से ज्यादा गड्डियां
क्या कहना है तुम्हारा
ठीक से तो चल रही है देश की अर्थव्यवस्था
कैसे लगते हैं तुम्हे क़तार मे खड़े हुए लोग
क़तार जब बिखरती है और तुम शीशे के पीछे से
चिल्लाते हो “लाइन मे रहो”
तो कैसा लगता है
लाइन के न भी बिखरने पर थोड़ा चिल्ला लेने मे
कुछ ग़लत नही है खजांची
जीने के लिए थोड़ा गर्व चुराने मे कैसा हर्ज
तुम्हारे हाथ की उंगलियों ने आज तक गिने हैं
कितने नोट
तुम कुछ अन्दाज़ बता सकते हो
यह जो तुम्हारी उंगलियों की पोरों से मिट गये हैं
वलय के चिह्न

कितने नोटों पर छपे होंगे कह सकते हो
कितनी तिजोरियों मे होंगे तुम्हारे अंगूठे के निशान
सबका तबादला हुआ तुम जमे रहे
तुम जिस कुर्सी पर बैठते हो उसकी गद्दी दब गयी है
तुम्हारे पृष्ठ भाग के आकार मे
तुम्हारे अगल बगल के लोग बदलते रहे
कुछ तबादले , कुछ तरक्की के लिए
तुम्हारे सामने भी तो आये होंगे कितने
धन्नासेठ, सुनार और जमींदार
तुमने कैसे बचाया अपना सन्तोष, अपना ईमान
तुम्हे देख कभी पूछा किसी ने
रकम से इतर कोई दूसरा सवाल
इतने जमा, इतने की निकासी
क्या कभी लिया मैनेजर ने घर का हाल

कभी देखा तुमने जब तुम गिन रहे थे उनके नोट
तो पंजों पर उचके लोगों ने अपनी आंख भी नही झपकी
विश्वास और अविश्वास की दहलीज था तुम्हारे काउन्टर का शीशा
अच्छा यह कहो
ज़मीन के बड़े बड़े सौदों के बीच तुम्हे कितनी बार दिखा
अपने मकान का झड़ता हुआ पलस्तर
खैर जाने दो
यह जो तुम्हारे काउन्टर की जगह पर लग गयी है मशीन
इससे कितनी ईर्ष्या करते हो तुम

कहो खजांची
दिन बीत गया , क्या पाया
क्या छूट गया क्या हाथ आया

***

घास की दो पत्तियां

उस समय जब
वैमनस्य से टूट की कगार पर पंहुच जायेगी दुनिया
बंजर भूमि पर कुछ नही बचेगा
बचे हुए अन्तिम कुछ लोग
बांट रहे होंगे बची हुई चीज़ें
जब दुनिया के आखिरी सौदों की आखिरी बोली
लग रही होगी
जब अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र
अपनी बड़ी बड़ी परिभाषाओं को ढहा रहे होंगे
यह स्वीकारते हुए कि दुनिया को सबसे ज्यादा हानि
भीमकाय परिभाषाओं ने पंहुचाई
ठीक उस समय धूसर ज़मीन पर उगेंगी
घास की पहली दो पत्तियां
जो पत्थर हो चुके मनुष्य मे
रोपेंगी मनुष्यता .....।
***

भाषा

1.
भाषा को नही पता थी अपनी ताक़त
लोग जानते थे उसे बरतना
भाषा नही जानती थी
कि उसके नाम पर है कोई दिवस
उसी की बदौलत हैं अनेक पुरस्कार
भाषा बस इतना जानकर सन्तोष मे थी
कि एक मरीज़ डाक्टर से कह पा रहा है
अपना दर्द
2.
भाषा नही जानती थी
कि उसके भीतर एक दूसरी भाषा रहती थी
जो कागजों मे नही होती थी दर्ज
जिसमे किसी सच को न्याय की कार्रवाई से बेदखल
कर सकने के लिए
अफसरों को था यह कह देने का अधिकार
कि इसे न शामिल किया जाए रिकार्ड मे
3 .
जिसके पास बहुत कुछ था कहने के लिए
भाषा उसी से रूठ गयी थी
जिसको बार-बार बुलाया जाता था
जन को संबोधित करने के लिए
उसके लिए भाषा का कोई महत्व नही था
उसके सहयोगी उसके पुराने भाषणों मे
शब्दों का हेर फेर कर उसे बोलने के लिए दे देते थे
4.
भाषा मे पारंगत एक व्यक्ति जानता है
कि किस बात को देने हैं कान
और किसे कर देना है अनसुना
5.
भाषा को शब्दकोश से नही है मोह
भाषा चाहती है
कि मूक-बधिरों की सांकेतिक भाषा मे
ज्यादा से ज्यादा हों संकेत
और दुनिया को चलाया जाए इस तरह
कि दुनियाभर की सारी बातें समा सकती हों
सिर्फ उतने संकेतों मे
6.
भाषा जानती है
अनसुना रह जाने की टीस

भाषा यह भी जानती है

कि सुने जाने के लिए
एक व्यक्ति को
केवल भाषा का आना काफी नही है।
7.
भाषा की भवें तन जाती
जब कोई किसी से कहता
'चुप रहो'
भाषा खूब खुश होती सुनकर
जब कोई कहता
'मैं अपनी खुशी शब्दों मे बयान नही कर सकता'
8.
भाषा नही चाहती
कि किसी की पीड़ा भाषा की सामर्थ्य से बाहर चली जाये
भाषा अपना मन
इतना कड़ा कभी नही कर सकी
कि सुन सके शब्दों का चीख मे बदलना।
***

घर

दादा चाहते थे
गांव मे हो बड़ा सा घर
सारे कुनबे के लिए एक
बड़े से आंगन मे एक साथ गिरे
सारे बेटे बहुओं की धूप
दादा के लिए धूप का अर्थ
सबको एक साथ बैठे देखना था
दादा पीछे थे समय से
नही समझते थे कि क्यों पक्की हो रही हैं
शहर को जाती हुई सड़कें
पिता ने शहर मे ली ज़मीन
हैसियत के हिसाब से उठवाई कमरों की दीवारें
पिता ने सोचा
वो चल रहे हैं समय के साथ
शहर के भीतर भी बड़ा-छोटा था
ऊंच-नीच थी
पॉश इलाक़े और चलताऊ कालोनियां थीं
मैंने एक प्रतिष्ठित इलाके में
आलीशान बिल्डिंग बनवाई
उसकी बालकनी से दिखता था
आधा नगर, दूर तक समुद्र
और समुद्र से लगे पहाड़
मैने सोचा मै चल पड़ा हूं
समय मे आदमी की औसत चाल से कहीं तेज़

मैने सोचा कि आने वाली
दो तीन पीढियों को भायेगा ये घर
एक दिन मैने अपने बेटे के मुंह से सुना
वो बता रहा था उस नयी ख़बर के बारे मे
जिसमे लिखा था कि भविष्य में बंटेंगी
ज़मीनें चांद पर
बताते हुए वह उतना ही आश्चर्य मे था
जितना सुनते हुए मैं
किन्तु इस सत्य को स्वीकार करने में वह
मुझसे कहीं ज्यादा तैयार था।
***
निवास - कानपुर
मर्चेंट नेवी मे अभियन्ता

बेटियों के गुमसुम रहने से पिताओं की उम्र कम होती है - सपना भट्ट की कविताएं

प्रेम पिता का दिखाई नहीं देता चन्द्रकान्त देवताले की प्रसिद्ध कविता है। इस नाम से एक शानदार संग्रह का चयन एवं सम्पादन कवि कुमार अनुपम ने किया है। इस संग्रह की कविताओं को पढ़ते हुए फेसबुक पर पढ़ी सपना भट्ट की इन कविताओं की स्मृति साथ रही। मुझे इन कविताओं में इस संग्रह का मार्मिक विस्तार मिला। मैंने कवि से इन कविताओं के लिए अनुरोध किया, उन्होंने इस अनुरोध का मान रखा । ***

पिता

पिता से मुझे मिली
वह थोड़ी सी उदात्तता और साहस
जिससे पहाड़ की बेटियों को
जीने की आसानियाँ मिला करती हैं

मैंने माँ से नहीं पिता से पूछे
अवांछित स्पर्शों और ख़राब दृष्टियों के मानी

पिता ने ही मुझमें अंगार बोये
कि मैं हर अनचाही छुअन का प्रतिकार कर सकूँ

मैंने पिता को ही दी
पहले प्रेम की सूचना।
पहली बार हृदय टूटने पर
पिता की ही छाती से लग कर रोई

मेरा रोष, क्षोभ और करुणा
पिता ने ही चीन्हा पहली बार
मेरी कॉपियों के पिछले पन्नों की आड़ी टेढ़ी लिखतों से

ब्याह के वक़्त
पिता ने ही मेरे कान में कहा धीरे से
कि याद रख ;

"यह गाड़ी जो तुझे ससुराल ले जा रही है
यही गाड़ी तुझे तेरे मायके भी ला सकती है
जब तू चाहे ।
कि तेरे अब दो दो घर हैं बच्ची"

फिर यह हुआ कि
मैंने दुःख नहीं कहे पिता से ब्याह के बाद

पिता ने ही निरख कर
एक दिन मुझसे कहा
कि बेटियों के अकेले रोने

और गुमसुम रहने से पिताओं की उम्र कम होती है

और सच में
पिता उम्र से बहुत पहले चले गए

मैं क्या करती !
रोने और गुमसुम रहने पर कब किसका ज़ोर चलता है ....
***

माँ के बाद मायका

मायके जाने पर
देखती हूँ तुम्हारा बिस्तर
जिस पर पहले आयोडेक्स और गाढ़े तेल की
महक वाला तकिया हुआ करता था
अब उस पर करीने से चादर बिछी रहती है

मेरी आँखें धुंधला गयी हैं या
तुम ही दीवार पर लगी तस्वीर में नहीं हो अपनी
तुम्हारा मोटे कांच
और सुनहरी कमानी वाला चश्मा भी तो कहीं नहीं मिलता

कितना चिल्लाती थी हम पर
आओ फिर से बरज दो
चौके में चली आई हूँ चप्पलें पहन कर

देवघर में
हफ्तों दीपक नही जलता
तुमने रिश्वत दी है क्या ऊपर वाले को?

गोबर पाथती,उपले बनाती
तुम्हारी फटी हथेलियां चेहरे पर महसूस करती हूं
कोई खरोंच नहीं लगती पहले जैसी

तुम्हारा हथियाया पापा का रेडियो
कौन कबाड़ी ले गया पता नहीं
वहां अब सा रे गा मा कारवाँ वाला ट्रांजिस्टर सजा रहता है

तुम्हारे फोन को
सेव किया है माँSSS के पीछे
आ की लंबी ध्वनि के साथ
कोई उठाता नहीं
लेकिन जितनी देर बजता है उतनी लम्बी साँस आती है

तुम सुख से तो हो
गठिया कैसा है तुम्हारा इस जाड़े?

एक मज़े की बात बताऊं
तुम्हारी घसियारिन सहेली
गीता आंटी के नकली दाँतो का सेट
हंसते ही जब तब बाहर आ गिरता है
तुम देखती तो कितना हँसती

वहां कौन है तुम्हारी सहेली
किससे चिढ़ती हो !
किसे देती हो पहाड़ी गालियां
किसे अपने उबाऊं भजन सुनाती हो!

तुम दो बरस बाद जाती
तो देख पाती

कितनी सुंदर कविताएँ लिखने लगी मेरी बेटी मुझ पर

माँ !
हमे कोई नहीं बुलाता बार त्योहार पर मैत
कोई हमको देखने नहीं आता हारी बीमारी में
कोई नहीं कहता
कि मेरी भड्डू पहाड़ पर सम्भल कर रहना

इतना तरस गयी हूँ तुम्हारी आवाज़ को
कि दाएं मकान वाली सुमन फूफू से कहती हूँ कि
मुझे लाटी कह कर पुकारा करे

अब जब तुम कहीं नहीं हो तो
पड़ोस की सब स्त्रियां
आंटी से मौसियाँ काकियाँ हो गयी हैं

फिर भी
तुम्हारी कमी नहीं पूरती
लाख जतन कर लूँ
किसी त्योहार में तुम्हारी याद नहीं छूटती
****

इमोजी

तुम कहते हो "खुश रहा करो"
जबकि जानते हो कि ख़ुशी यहाँ
एक झूठ और छलावा भर है बस ।

तुम्हे मुस्कुराने की इमोजी भेजकर
निश्चिन्त हो जाती हूँ कि मेरे झूठ मूठ हँस देने से
तुम्हारे आंगन का हर फूल खिला रहेगा ।

पीछे पलट कर देखती हूँ तो पाती हूँ
एक लंबा समय ख़ुद से
झूठ बोलने में गंवा दिया ।
जाने किस से नाराज़ थी, ख़ुद से या दुनिया से।

ब्याह के बाद पिता ने पूछा
कि तू सुखी तो है न रे मेरी पोथली ?
माँ ने आंखे पोंछ कर मुझसे पहले उत्तर दे दिया
और क्या ! जमीन जायदाद, उस पर एकलौता लड़का
क्या दुख होगा ससुराल में !

मैंने पिता का हाथ, हाथों में लेकर कहा
तुम अब मेरे बोझ से मुक्त हो गए हो बाबा
मेरी चिंता मत किया करो।
मैं बहुत ख़ुश हूँ, देखो ये मेरे गहने

पता नहीं पिता आश्वस्त हुए या नहीं,
उन्होंने आंख में तिनका गिरने की बात
कहकर मुंह फेर लिया था ।
मैंने फिर कभी अपना दुःख उनसे नहीं कहा।

अब जब बेटी पूछती है माँ !
आप अकेले इतनी दूर ।
कोई दुख तो नहीं है न आपको
मैं उसकी चिन्तातुर आंखें देखकर कहती हूँ
हां कोई दुःख नहीं।

मैं अब पत्थरों पेड़ो और नदियों से
अपने दुःख कहती हूँ।

तुमसे कहना चाहा था, कभी कह नहीं पाई ।

क्योंकि तुम्हे सोचते हुए
मेरी इन आँखों मे तुम्हारा नहीं;
अपने अशक्त और बेबस पिता का
प्रतिबिंब चमक उठता है।
मैं घबराकर मुस्कुराने की इमोजी तलाशने लगती हूँ।
***

बेटी की माँ होना

धुंधलाई सी एक स्मृति में
खेत से लौटी क्लान्त माँ का बेडौल पेट उभरता है ।

किसी उदास कातिक में
मैं अपने जन्म का उत्सव
रुदन में बदलते देखती हूँ।

बुढ दादी की कांपती हुई आवाज़ आती है
ये रां ! फीर बिटुल ह्वे ग्याई ।

निष्प्राण माँ की आंखों में ममत्व नहीं
शोक पसर जाता है।

पोते की प्रतीक्षा में पगलाई दादी बड़बड़ाती है
तेरा नसीब फिर से फूट गया रे परकास !
और यह भी कि
"सुख वाली डाक
ईश्वर हर पते पर नहीं भेजते"।

तीन बहनों में बिचली होना भी
क्या मुसीबत है!
मुझे कभी नहीं मिले
नए जूते, यूनिफार्म और किताबें

दीदी से मुझ तक आते आते
उनकी नवेली सुगंध, सीलन में तब्दील हुआ चाहती थी

दोहराव की निरन्तरता का यह शोक
अल्हड़पन में मन को ही नहीं
अस्थियों तक को गलाता था।

रुंधे कंठ में अबोध कामनाएं सिसकती थीं।
करुणा उपज कर स्वयं पर ही खर्च हो जाती थी।

अभावों का यह दोहराव मुझ पर उम्र भर बीता।

अक्तूबर फिर चढ़ आया है
इन दिनों स्वप्न में फिर अपनी
सद्य प्रसवा मां का कुम्हलाया मुख देखती हूँ।

घबरा कर अपनी साँस टटोलती हूँ ।
आश्वत होती हूँ कि मैली सी एक गुदड़ी में
एक निर्दोष हलचल अभी ज़िंदा है।

बरसों पहले बीते उस कातिक से भागती हुई
मैं अपने वर्तमान से टकरा कर कराहती हूँ
कि तभी बेटी माथा सहला कर "माँ" पुकार लेती है।

आज अनुभव से कह सकती हूं कि
एक बेटी की माँ होना भी
कोई कम बड़ी आश्वस्ति नहीं।

अपनी बेटी को चूमते हुए चाहती हूँ कि कहूँ
"तुम नाहक कमज़ोर पड़ी मेरे होने से माँ"
मैंने बेटी जन कर वह जाना
जो तुमने कभी समझा ही नहीं....
***

स्वप्न में माता पिता

पिता स्वप्न में दिखते हैं।
मायके के तलघर में रखी
उनकी प्रिय आराम कुर्सी पर
बैठकर सिगरेट पीते हुए,

कभी कोई फ़िल्म या क्रिकेट देखते हुए
या कोई अंग्रेज़ी किताब हाथ में थामे
चाय के घूँट भरते हुए।

उन्हें स्वप्न में देख आश्वस्त रहता है मन
कि वे वहां भी सुख से ही होंगे।

माँ जैसे कभी जीते जी
एक जगह टिककर नहीं बैठी;
स्वप्न में भी कभी एक दृश्य में नहीं बंध पाती।

दिखती है कभी गौशाला में गोबर पाथती हुई।
कभी पशुओं की सानी पानी करती हुई।
जंगल से धोती के छोर में काफ़ल बांध कर लाती हुई।

जलती दुपहरी चूल्हे पर दाल सिंझाती,
भात पसाती हुई
निष्कपट पिता को दुनियादारी समझाती हुई।

बेटियों को जिम्मेदार और
सुघड़ होने की तरकीबें सिखाती हुई
पराए घर मे बाप की इज़्ज़त
रखने की हिदायतें करती हुई।

मैं स्वप्न से जागकर सोचती हूँ
कि दुनियादारी में असफल अपनी
बेटियों के दुःख जानकर
क्या माँ अब भी चैन से बैठ पाती होगी

और उदास हो जाती हूँ ...
****
सम्पर्क cbhatt7@gmail.com

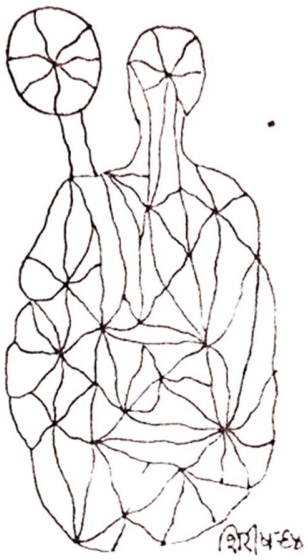

बारिश ईश्वर का दिया गया तोहफ़ा नहीं - <u>दिव्या श्री की कविताएं</u>

दिव्या श्री हिन्दी की युवतर कवि हैं। उनकी कविताएं अपने क्रिया-व्यवहार और अनुभव में आंचलिक के तद्भव से लेकर शास्त्रीयता के तत्सम तक एक बड़े कैनवास पर उकेरी गई कविताएं हैं।

बारिश ईश्वर का दिया तोहफ़ा नहीं

वे बहनें नहीं आती हैं नैहर सावन में
जिनके भाई नहीं होते
वे कल्पना में ही व्यतीत करती हैं माह
नहीं लगातीं आलता अपने पांव में
मेंहदी का रंग फीका लगता है उन्हें

सप्ताह भर पहले से ही
वे नहीं जातीं बाजार
सजी राखियां देखकर
भाई याद आता है उन्हें

बारिश ईश्वर का दिया तोहफ़ा नहीं
आंसुओं की नदी है उन बहनों के लिए
जिन्हें एक धागा नसीब नहीं हुआ

सावन माह है हरियाली का
ये नहीं समझ पाईं वे बहनें
जिनकी आँखें रहीं हमेशा भरी-भरी
बिन गुनाह पश्चाताप में डूबी बहनें
हर बार सुन लेती रहीं वे बातें
जो कहे जाते हैं अब भी अबूझ शब्दों में

कई बहनों का भाइयों के इंतज़ार में नहीं हो सका मुंडन
कई बहनें अपने से बड़े को 'खाकर' ही पैदा हुई
और कई तो पीठिया के जन्म लेते ही निगल गई उसे।
***

कुंजी

ताला बनाने से पहले
बनाई जाती है उसकी कुंजी
प्रेम चुनने से पहले जीवन सुनिश्चित करता है मृत्यु
कहानी पूरी जिंदगी होती है
कविता उसका निचोड़

मैंने जीवन को जीवन की तरह नहीं जिया
दुःख में अपनी हथेली की जगह
उसे ही मान लिया वो हथेली

जिसकी गर्माहट में दुःख पिघलकर पसीना हुआ करता था
दुःख अब भी है, हथेली बहुत दूर
ये दुःख अब उन सभी दुखों से भारी है!

मन जितना व्यथित है
आँखें उतनी ही सूनी
एक प्रेम के चले जाने से
कितने निरर्थक हो जाते हैं हम
जबकि प्रेम का जाना कभी बुरा नहीं होता
बुरा होता है, प्रेम के जाने को सहन न कर पाना

उसके जाने के बाद
पहली बार लिख रही हूँ कविता
मेरे प्रिय कवियो और प्रेमियो !
माफ़ करना मुझे
मैंने लिखने की कोशिश भर की है
***

याद रहे ओ जाँ -निसार

लिख सकती हूँ अपनी कविता में
वे सारे दर्द जो तुमने दिए थे
गुलाब के फूल से लेकर उसके कांटों तक का
बखान कर सकती हूँ मैं
प्रेम में ही नहीं
तक़लीफ़ में भी कविताएँ ही साथ देती हैं

गर पूछो मुझसे सबसे महफ़ूज़ जगह
तो कमरे का अंधेरापन होगा वह
न होगी रोशनी, न डर होगा उसे खोने का
जैसे सबसे माक़ूल होता है एक तरफा प्रेम
कि प्रेम की हिफ़ाज़त ख़ुद ख़ुदा ने भी नहीं की
मैं तो शहज़ादी ठहरी एक ग़रीब बाप की

हमारे बीच
केवल दुआ-सलाम भर के रिश्ते नहीं थे
ओ परवरदिगार, मेरे मौला
इल्तिज़ा है मेरी
मेरे महबूब को उसकी मुहब्बत क़ुबूल हो
पर याद रहे ओ जाँ- निसार
आजिज़ी में भी दरख़्त अपने पत्ते बदलते हैं
जड़ें नहीं।
***

मेरी कविताएं मेरी मृत्यु से शापित है

सबसे पहला ख़त शब्दों से नहीं
स्पर्शों से लिखा गया
उसमें अक्षर नहीं भाव थे
देह नहीं आत्मा थी
साथ नहीं प्रेम था

मैंने पहले ही ख़त में कर दी चूक
प्रेम की जगह दुःख लिखकर
गोया दुखद ही रहा मेरा जीवन

मैंने ख़त लिखने की उम्र में कविताएँ लिखीं
कविताओं में प्रेम की जगह स्त्री अस्मिता की बात कही
जब उम्र ख़त लिखने की नहीं रही
दूर बैठा प्रेमी वक़्त-बेवक़्त याद आने लगा

वर्षों पहले हम एक-दूसरे से दूर हुए थे

कविताओं ने हमारी दूरियों में भी एक नई जगह दी थी
दुनिया कहती है कवि ज़िंदा रहते हैं अपने शब्दों में
अपनी मृत्यु को कवि जो कविता कहता है

कविताएँ कवि के मरने के बाद ज़िंदा रखती है यदा-कदा
पर यक़ीनन कवि अपनी कविताओं में कितनी बार मरता है
यह कौन जानता है?
मेरी कविताएँ मेरी मृत्यु से शापित है।
***

एक बूंद आँखों का पानी

स्वप्न देखती हूँ
पीली फ्राक पहन कर
मैं सरसों के खेत में झूम रही हूँ
मगर फूल खिलने बाकी हैं अभी

बगल के खेत में कोई बच्चा चारा काट रहा है
मैं हतप्रभ हूँ देखकर
ऐसा कोई नहीं जो उसे
क्षितिज की रोशनी का रास्ता बता दे

उदासी से भरी हुई मैं
कि अचानक मेरे आँसू लुढ़कत- लुढ़कते
कलियों पर जा गिरे
सरसों के फूल लहलहा उठे
सूर्य अस्त होने को है
उसकी लालिमा ने क्षितिज का रास्ता ढूंढ़ लिया है
एक बूंद आँखों का पानी
मन के कीचड़ को साफ कर जाता है
और बारिश की बूंदें
सावन जैसी हरियाली का उत्सव मनाती हैं।
***

परिचय

दिव्या श्री, कला संकाय में स्नातक कर रही हैं। कविताएं लिखती हैं। अध्ययन में अंग्रेजी साहित्य एक विषय है और अनुवाद में भी रुचि रखती हैं। बेगूसराय बिहार में रहवास।

प्रकाशन: हंस, वागर्थ, वर्तमान साहित्य, समावर्तन, ककसाड़, कविकुम्भ, उदिता, इंद्रधनुष, शब्दांकन, जानकीपुल, अमर उजाला, पोषम पा, कारवां, साहित्यिक, हिंदी है दिल हमारा, तीखर, हिन्दीनामा, अविसद।

ईमेल आईडी: divyasri.sri12@gmail.com

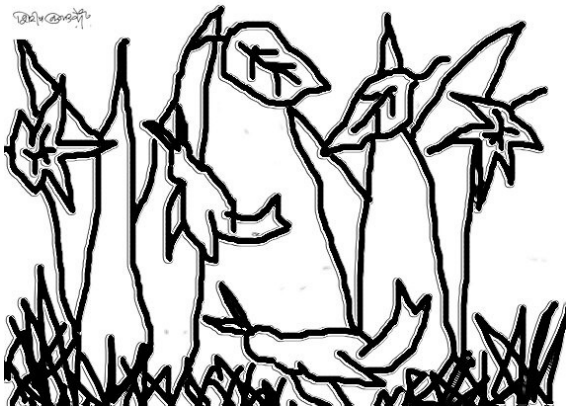

<u>हिन्दी साहित्य,न्यू मीडिया एवं प्रकाशक/प्रकाशन - कुमार अनुपम और आमोद माहेश्वरी से मेधा नैलवाल की बातचीत</u>

हिन्दीसाहित्य,न्यू मीडिया एवं प्रकाशक/प्रकाशन : कुमार अनुपम- (साहित्य अकादमी,दिल्ली)
साक्षात्कार

मेधा नैलवाल - हिन्दी और न्यू मीडिया के संबंध को आप किस तरह देखते हैं?

कुमार अनुपम - मीडिया ने जब अपना विस्तार किया है न्यू मीडिया के रूप में और इसमें बहुत सारी ऐसी तकनीक जुड़ गयी है, जिससे हिन्दी का भी विस्तार हो रहा है। किसी भी प्रकार की सामग्री के लिए हिन्दी सबसे बड़ा स्रोत है, जिससे कोई अछूता नहीं रह पा रहा है,भले ही वह विज्ञापन हों, फिल्म हों, तमाम धारावाहिक हों, कार्टून चैनल हों और भी ढेर सारी चीजें - इन सबमें हिन्दी का अभी जिस तरह से विस्तार हुआ है और न्यू मीडिया में जिस तरह से फेसबुक एक बड़े माध्यम के रूप में उभरा,ब्लॉग्स उभरे और कई पोर्टल्स आ गए हैं या पॉडकास्ट आ गया है तो इन सब के आने से जो व्यक्ति की अभिव्यक्ति थी, वह ज्यादा लोकतान्त्रिक हुई है। पहले क्या था कि मीडिया हाउसेस की ही मोनोपॉली हुआ करती थी कि क्या छापना है,क्या सुनाना है, लेकिन न्यू मीडिया के आने से उसमें एक बड़ा स्पेस निर्मित हो गया है। इसमें सिर्फ हिन्दी ही नहीं, तमाम भारतीय भाषाओं को बड़ा विस्तार मिला है। हिन्दी को लेकर मैं इसलिए ज्यादा आशान्वित हूँ, क्योंकि यह दुनिया में तीसरे स्थान पर बोली जाने वाली सबसे बड़ी भाषा है और इतने बड़े भाषा वर्ग को जितना अधिक से अधिक प्लेटफ़ॉर्म मिले वह बेहतर ही है,हिन्दी के लिए अच्छा है। दरअसल साहित्य ने भी अपने बहुत सारे रूप बदले हैं। अभी साहित्य में भी नयी विधाओं का विस्तार हो रहा है। पहले कविता,कहानी,उपन्यास,निबंध- इन्ही विधाओं तक साहित्य सीमित था, किन्तु पिछले दो दशकों में तमाम ऐसी विधाएं आई हैं, जो पहले थीं, लेकिन उनका उस तरह से विकास नहीं हो पाया था । अभी लगातार उस दिशा में कार्य हो रहा है और पाठकों की इस ओर रुचि बढ़ी है। जैसे अभी ट्रेवेलॉग खूब पढ़े जा रहे हैं या डायरी पढ़ी जा रही है।

ये जितने भी अभिव्यक्ति के माध्यम हैं (कि मीडिया तो मूलतः माध्यम ही है) जितने भी माध्यम ऐसे उभरे हैं उसमें संवाद आया है कि आप इंटरव्यू ले रहे हैं । इंटरव्यू लेना भी कला और साहित्य का बहुत ही महत्वपूर्ण माध्यम बन गया है। इस पर काफी लोगों द्वारा काम भी हो रहा है। अभी एक पुस्तक आई है ललित कला अकादमी से व्योमेश शुक्ल

की, उसमें राय कृष्णदास का इंटरव्यू किया गया है या अखिलेश पर किताब आई । इनमें एक दूसरे से संवाद था और उसमें से प्रश्न हटा कर उसे जिस तरह से किताब का रूप दिया गया है, उससे चीज़े बदल रही हैं, उनका विस्तार हो रहा है और मेरे हिसाब से यह एक अच्छी स्थिति है।

मेधा नैलवाल - सोशल मीडिया पर लेखकों की उपस्थिति से पाठकों की संख्या पर क्या फर्क पड़ा है?

कुमार अनुपम- लेखकों की पोस्ट पर फौरी तौर पर लोग अपनी प्रतिक्रिया तो दे ही देते हैं। अब मूल बात ये है कि जो तमाम पत्रिकाएं थीं, जहां पर साहित्य छपता या प्रसारित होता था, वहाँ पर एक संस्था संपादक जैसा काम करती थी और संपादक का काम सिर्फ यही नहीं था कि चीज़े उसके पास इकट्ठा हो गयी हों और वह उसको प्रकाशित कर दे। उसमें वह एक स्वरूप बनाता था। मान लीजिए एक अंक निकालना है तो उस अंक का क्या स्वरूप होना चाहिए, उस विषय के कितने आयाम हैं, वो आयाम कैसे-कैसे उसमें हर तरह से समायोजित किए जाएं - यह सब परिकल्पनाएं होती थी उसके तहत वह रचनाओं का चयन करता था। कई बार रचनाओं में संशोधन भी करवाता था और बेहतर कराता था। एक पक्ष तो यह है कि संपादित होकर चीज़े आती थीं । कोई जरूरी नहीं कि वह संपादित करवाता ही रहा हो, कई बार वह उस रचना से पूरी तरह संतुष्ट हो जाता था और उसे छापता था। उससे पत्रिका का प्रत्येक अंक अपना विशेष महत्व रखता था । फेसबुक के आने से लोगों को खुद को अभिव्यक्त करने में ज्यादा आसानी हो गयी है। पहले हम लोग पत्रिकाओं में रचनाएं भेजते थे, कभी वह चुनी जाती थीं - कभी नहीं चुनी जाती थीं, बहुत दिनों तक इंतजार करना पड़ता था, सालों इंतजार करना पड़ता था अब वह चीज खत्म हो गयी। लोग खुद को तुरंत अभिव्यक्त कर पा रहे हैं। ये माध्यम अच्छा है, लेकिन इसका अच्छा उपयोग भी होना चाहिए । एक पक्ष तो यह है कि एक तरीके से इसे ये भी कहा जाए - जो संपादक थे, उनकी, जो दूसरा वर्ग कहता है कि एक तानाशाही थी या सोच थी कि उसी के अनुकूल जब रचनाएं आती थीं, तभी वह प्रकाशित करता था । बहुत हद तक इस बात से इन्कार भी नहीं किया जा सकता है। उसके पीछे कई विचारधाराएं थीं, उनका अपना सौंदर्यबोध था, यदि वह कवि हैं तो कविता की ओर उनका झुकाव होता था,कहानीकार हैं तो उस ओर,ये सब बातें थीं। न्यू मीडिया के आने से उनकी तानाशाही खत्म हुई और हम स्वयं को अभिव्यक्त कर पा रहे हैं, लेकिन इसके साथ यह भी हुआ है कि जो एक प्रबंध था एक विषय को सारे आयामों के साथ प्रस्तुत करने का, वह छिन्न-भिन्न हुआ है। इसीलिए, यदि हम देखें तो इधर बीच पत्रिकाओं का कोई स्वरूप नहीं दिख पा रहा है, उसका प्रभाव सिर्फ यहीं पर नहीं आया है, पत्रिकाओं पर भी उल्टा पड़ा है तो फेकबुक पर चीज़े आ रही हैं - अच्छा है, उसे हम तुरंत पढ़ते हैं, अपनी प्रतिक्रिया भी देते हैं, लेकिन वो कितनी गम्भीर प्रतिक्रिया है उस पर भी बात होनी चाहिए। गंभीरता ना होने के कारण ही शायद हिन्दी आलोचना पर भी सवाल उठने लगे हैं। इंडिया टुडे की अभी जो वार्षिकी आई है, उसे पलटते हुए मैं देख रहा था, उसमें मौजूदा हिन्दी आलोचना पर बहुत अच्छी बातचीत हुई है, तमाम प्रश्न इसी मुद्दे को लेकर उठाए गए हैं। निश्चित तौर पर इसका पक्ष-

विपक्ष दोनों है । माध्यम कोई भी बुरा नहीं होता है, उसका अच्छे तरीके से इस्तेमाल कैसे किया जाए यह बहुत महत्वपूर्ण है।

मेधा नैलवाल - प्रचार एवं बिक्री के नए मंच न्यू मीडिया ने तैयार किए हैं, इस पर आपके क्या अनुभव हैं ?

कुमार अनुपम - किताबें आम जनता तक पहुँच रही हैं, लेकिन अभी भी हमारी जो मूल चिंताएं हैं, वे आधारभूत सुविधाओं की हैं। जिस व्यक्ति को रोटी,कपड़ा,मकान,इलाज,शिक्षा जैसी आधारभूत सुविधाएं नहीं मिल पा रही हैं, ऐसे में कल्पना करना कि उसके पास न्यू मीडिया से जुडने का कोई माध्यम उपलब्ध होगा, कितना अश्लील लगता है। यदि उसके पास न्यू मीडिया तक पहुँचने का माध्यम उपलब्ध भी हो, तो क्या अशिक्षा के कारण वह उसे सही तरीके से इस्तेमाल कर पाएगा ? ऐसी ढेर सारी चीज़े हैं। मुझे लगता है आज के समय में भी एक बड़ा वर्ग इन सब चीजों से बहुत दूर है, लेकिन ऐसा भी है कि तमाम कंपनियों ने बड़े सस्ते दामों में चीज़े उपलब्ध कराई हैं, जिनका लोग इस्तेमाल कर रहे हैं और उस माध्यम से चीज़े उन तक पहुँच भी रही हैं। न्यू मीडिया से प्रकाशित रचनाओं पर असर पड़ता है और मैं कहता हूँ कि जो लोग इन माध्यमों पर हैं, उन्हे अच्छे तरीके से प्रशिक्षण दिए जाने की भी जरूरत है। बहुत अच्छा पेज बना लिया, बहुत अच्छा पोर्टल बना लिया, लेकिन उसका लोगों तक प्रसार नहीं कर पा रहे हैं और उनका जो लक्ष्य है- पाठक, श्रोता और दर्शक – पढ़,देख, सुन नहीं पा रहे हैं, तब तक समस्या है। यदि इन समस्याओं का हल हो जाए तो इस माध्यम का और अच्छा इस्तेमाल हो पाएगा ।

मेधा नैलवाल - लेखक,प्रकाशक और पाठक - किताब की इस आधारभूत संरचना में न्यू मीडिया ने नया क्या जोड़ा है?

कुमार अनुपम - न्यू मीडिया के आने के बाद या इससे पहले भी, साहित्य के लिए स्पेस कम था। न्यू मीडिया के आने से स्पेस और भी घटा है, आप जितने भी माध्यम देख रहे हैं , पहले भी अखबारों में जो जगहें हुआ करती थीं साहित्य को लेकर, वो लगातार सिकुड़ रही हैं । कई पेज बंद हो गए हैं। ऐसा नहीं है कि न्यू मीडिया ने आकर उस ओर ध्यान दिया है, ये बड़ी चिंता कि बात है, ध्यान दिया जाना चाहिए । कई खिड़कियां उन्होंने जरूर खोली हैं, जिनमें अन्य मुद्दों, संस्कृति,राजनीति,सामाजिक मुद्दों इत्यादि पर तो चर्चा हो रही है, लेकिन साहित्य को केंद्र में लेकर जिस तरीके से बात की जानी चाहिए थी, वह बहुत कम है। उस पर थोड़ा और गंभीर होने की आवश्यकता है। दरअसल कोई भी मीडिया तात्कालिकता को सबसे ज्यादा महत्व देता है और तात्कालिकता कभी भी साहित्य का मूलभूत केंद्र नहीं रहा है, यह उसकी इच्छा में ही नहीं है। हो सकता है वह तुरंत की घटना को देख कर प्रस्तुत कर रहा हो, किन्तु वह मीडिया के लिए उतना सनसनीखेज नहीं है । जो कुछ भी सनसनीखेज तात्कालिक रूप से प्रभावी है, उसको न्यू मीडिया ज्यादा महत्व देता है, बनिस्पत साहित्य के।

मेधा नैलवाल - क्या न्यू मीडिया ने पुस्तकों के कॉपीराइट पर कोई प्रभाव डाला है ? सोशल

मीडिया और ब्लॉग पर कॉपीराइट अधीन साहित्य बिना पूर्वानुमति या पारिश्रमिक के छपता है, इससे प्रकाशन के हितों पर क्या प्रभाव पड़ा है?

कुमार अनुपम - बिल्कुल, प्रभाव तो पड़ रहा है । एक तो लेखक का ही नुकसान हो रहा है कि वो बड़ी मेहनत करके, न जाने कितनी रातों की नींद लगाके,खोज करके उस विषय को लिखता है । अभी जो तमाम यू ट्यूबर्स आए हैं, जब हम उनकी भाषा और विषय प्रस्तुतीकरण देख रहे होते हैं, तो बड़ी निराशा होती है कि 80 प्रतिशत लोग ऐसे हैं, जो यूँ ही चले आए हैं। उन्होंने यू ट्यूब चैनल्स बना दिए हैं, तो वो कितने समझदार हैं, ये भी बहुत महत्व रखता है - और जैसा कॉपीराइट का आपने जिक्र किया, हमारे यहाँ का जो कॉपीराइट नियम है, उसके बारे में हमारे लेखकों को भी ठीक से पता नहीं है। सबसे पहले तो कॉपीराइट नियमों के बारे में हमारे लेखकों को प्रशिक्षित किए जाने की जरूरत है । तमाम पत्रिकाओं को चाहिए कि कॉपीराइट नियम क्या हैं, इस पर परिचर्चाएं चलाएं । पिछले दिनों एक बहुत बड़े प्रकाशक और बहुत बड़े लेखक के बीच कॉपीराइट के मुद्दे को लेकर बाद विवाद हुआ। हमारे यहाँ साहित्य अकादमी साहित्योत्सव होता है, उसमें भी यह चर्चा का विषय बना रहा । तमाम प्लेटफ़ॉर्म पर बात हुई। बात लेखकों के शोषण की बहुत दिनों से हो रही है, लेकिन इस पर एकजुट होकर कोई काम लेखकों की ओर से नहीं हो रहा है। कोई कोऑपरेटिव चीज ऐसी नहीं बन रही है, जिससे लेखकों के हितों का ध्यान रखा जा सके। इस समय सबसे बेसहारा यदि कोई है, तो वह लेखक है । मुझे लगता है कि कॉपीराइट वाले मुद्दे पर इन सभी माध्यमों में चर्चा होनी चाहिए, क्योंकि लेखकों का लगातार शोषण हो रहा है ।

मेधा नैलवाल - ई- पुस्तकों के प्रकाशन का आपका अनुभव कैसा है। इन पुस्तकों को कितने पाठक मिलते हैं, इनका भविष्य क्या है ?

कुमार अनुपम - यह नई पहल अच्छी है । प्रिन्ट माध्यम में कौन सी चीज पाठकों को बहुत पसंद आ रही है, यह सेलेक्टिव मामला हुआ करता था। हम सोचते हैं, अगर कविता की किताब है, कम पढ़ने वाले हैं, तो 600 छाप देते हैं अधिकतम । उपन्यास ज्यादा पढे जा रहे हैं, तो इसे 1100 छाप देते हैं । प्रकाशक ये अपने दिमाग से तय कर लेता था । आज के समय में पाठकों की इतनी रुचियाँ हैं और तमाम सर्च इंजन हैं, कि वो पाठकों को उनकी रुचि तक पहुंचा दे रहे हैं । ई-बुक्स के आने से पाठक अपने आप वहाँ तक पहुँच जाएगा, क्योंकि ज्यादातर माध्यम पर आजकल ये जरूरी है कि हम जितना ज्यादा कंप्यूटर फ्रेंडली या सर्वर फ्रेंडली होंगे, लेखक को निश्चित फायदा होगा। हमारे पास बड़ा उदाहरण है उदय प्रकाश के रूप में । उदय प्रकाश हिन्दी के पहले लेखक हैं, जो सबसे पहले इंटरनेट और विश्व की साहित्यिक दुनिया में जिस तरीके से उसका इस्तेमाल किया जाना था, उन्होंने सबसे पहले सीखा और उसका प्रयोग किया । आज भी वो इन माध्यमों से सबसे ज्यादा अर्न करने वाले लोगों में हैं। मुझे लगता है कि ये लेखक के लिए फायदेमंद है।

मेधा नैलवाल - ऑडियो बुक्स की शुरुआत भी इधर हिन्दी में हुई है। इस क्षेत्र में आपका अनुभव और राय क्या है ?

कुमार अनुपम - जो ऑडिओ बुक्स मैंने अभी तक सुनी हैं, कुछेक किताबें सुनी हैं, एक- दो के लिए मैंने आवाज भी दी है तो मुझे तो अब तक अच्छी प्रतिक्रिया मिली है। लोगों की अच्छी प्रतिक्रिया मिली है, उन्हें लगता है कि लेखक ही उन्हें सुना रहा है। ऑडिओ बुक्स के लिए जो कम्पनियाँ काम कर रही हैं, वो कोशिश करती हैं कि जो मूल लेखक था अगर उसकी आवाज से मिलती जुलती आवाज को ढूंढा जाता है - और जब वो सुनाते हैं, शुरू में थोड़ी ट्रेनिंग भी दी जाती है कि आपको कहाँ रुकना है,कितने आरोह और अवरोह के साथ अदा करना है, इसका भाव क्या है, तो इन चीजों का लगातार विकास हो रहा है । मुझे लगता है कि आने वाले दिनों में इसका बहुत सुंदर रूप देखने को मिलेगा । इसका एक बढ़िया स्वरूप कार्टून चैनल्स पर देखा जा सकता है । बच्चों के लिए आज के समय में कहानियों का एक बड़ा संसार खुल गया है। बच्चे नए तरीके से वैज्ञानिक कहानियाँ सीख रहे हैं, उनको लिखने वाले लेखक तो यही हैं, इन्हीं के बीच से लेखक गए हैं। मुझे लगता है कि ये सारे माध्यम लेखकों के क्षितिज को और बड़ा करेंगे। अभी हमारे कई लेखक फिल्मों के लिए महत्वपूर्ण पटकथाएं लिख रहे हैं । चाहे विमलचंद्र पांडे हों, गौरव सोलंकी हों - ढेर सारे नाम हैं, ये सभी सिनेमा में अभी बहुत अच्छा काम कर रहे हैं, लगातार लिख रहे हैं तो ये सारे माध्यमों से लेखकों का ही फायदा होगा।

****

आमोद माहेश्वरी-(राजकमल प्रकाशन,दिल्ली)
साक्षात्कार

मेधा नैलवाल - हिन्दी और न्यू मीडिया के संबंध को आप किस तरह देखते हैं।

आमोद माहेश्वरी - मेरे विचार में न्यू मीडिया में सोशल मीडिया मुख्य भूमिका निभाता है। हिन्दी में लिखना अब न्यू मीडिया में शुरू हो गया है। पहले सभी रोमन में लिखते थे अब यूनिकोड के आने से देवनागरी में लिखने लगे हैं। हिन्दी और सोशल मीडिया के साथ में जुड़ने से हिन्दी का बहुत बड़ा विस्तार हुआ है, उसका क्षेत्र बहुत बढ़ गया है। अब हर कोई सीधा जुड़ सकता है, अपनी बात सीधे लिख सकता है, इससे हिन्दी को भी मजबूती मिली है, व्यापकता बढ़ी है ।

मेधा नैलवाल - सोशल मीडिया पर लेखकों की उपस्थिति से पाठकों की संख्या पर क्या फर्क पड़ा है।

आमोद माहेश्वरी - बिल्कुल फर्क पड़ा है। जब तक सोशल मीडिया नहीं था, तब तक हमारे पास अख़बार और पत्रिकाएं ही माध्यम थे, अपनी

जानकारी वहाँ तक पँहुचाने के लिए । जब से सोशल मीडिया आया है, तब से प्रकाशक भी सीधे लेखकों से जुड़ गया है और पाठक भी सीधे लेखकों और प्रकाशकों से जुड़ गया है। इससे अपनी बात पँहुचाना और उनकी बात समझना,क्या पाठक चाहता है, क्या समाज में चल रहा है, इसे देखने समझने का एक नजरिया साफ हुआ है। कोई भी जानकारी जहाँ तक पहुँचने में 15-20 दिन लगते थे आज 15-20 सेकेंड में वहाँ तक पहुँचा जा सकता है।

मेधा नैलवाल - प्रचार एवं बिक्री के नए मंच न्यू मीडिया ने तैयार किए हैं, इस पर आपके क्या अनुभव हैं ?

आमोद माहेश्वरी - मैं इस बात को सभी के लिए सकारात्मक रूप में लेता हूँ। प्रकाशक, लेखक, पाठक सबके पास यही एक मंच है जो सबको जोड़ता है। सभी जानकारियाँ इसी से मिल रही हैं। आजकल किताब खरीदने के लिए लिंक भी न्यू मीडिया में मिल जाते हैं, जिनसे आप सीधा किताब खरीदने की साइट पर पहुँचते हैं। बहुत सारे लेख, आलोचनात्मक किताब के बारे में तरह-तरह की जानकारियाँ आपको सोशल मीडिया से मिल जाती हैं । आप अपनी पसंद तय कर सकते हैं। आप समझ सकते हैं कि आपकी रुचि की ये किताब है तो ही आप इसे खरीदें। बहुत तरीके से लाभ हुआ है। अभी भी हमारे सीनियर पाठक मेलों में अखबारों की कटिंग लेकर आते हैं कि ये समीक्षा छपी थी, हमको ये किताब पसंद है, क्या हम इसे देख लें, लेकिन अब उतना लंबा इंतजार करने की जरूरत नहीं है । कोई भी पाठक अब न्यू मीडिया से उसे जान सकता है और उस किताब को घर बैठे खरीद सकता है। ये सब लाभ हुआ है, इससे समय बचता है और जो आपको चाहिए, तुरंत आपके सामने हाजिर है।

मेधा नैलवाल - लेखक,प्रकाशक और पाठक किताब की इस आधारभूत संरचना में न्यू मीडिया ने नया क्या जोड़ा है?

आमोद माहेश्वरी- इसमें दोनों चीज़े हैं। पहले लेखक को अपने पाठक या अपना समुदाय बनाने में बहुत लंबा समय लगता था, अब सोशल मीडिया के माध्यम से उसका समुदाय अपने आप विकसित हो जाता है। उसके जानने वाले लोग हैं, जगह-जगह पर उससे सबका अपना एक क्षेत्र बनता जाता है। तो ये अच्छा भी है, लेकिन इसमें ये बुराई भी है - हर कोई इतनी जल्दीबाज़ी में है कि पूरी बात सोचे समझे अपनी कुछ भी प्रतिक्रिया तुरंत वहाँ लिख देता है। किसी को भी उसमें जोड़ देता है, यानी जल्दबाज़ी बहुत है। जो धैर्य से, समझदारी से इस माध्यम का प्रयोग कर रहे हैं, उनके लिए बहुत अच्छा है।

मेधा नैलवाल - क्या न्यू मीडिया ने पुस्तकों के कॉपीराइट पर कोई प्रभाव डाला है ? सोशल मीडिया और ब्लॉग पर कॉपीराइट अधीन साहित्य बिना पूर्वानुमति या पारिश्रमिक के छपता है,इससे प्रकाशन के हितों पर क्या प्रभाव पड़ा है।

आमोद माहेश्वरी - कॉपीराइट पर फ़र्क़ पड़ा है, लेकिन ये है कि जैसे जैसे उनको जानकारी हो रही है या प्रकाशक के तौर से ऐसे कॉपीराइट का उल्लंघन करने वालों पर कार्यवाही की जा रही है तो आगे के लिए वो लोग सावधानी भी रख रहे हैं । बहुत लोग ऐसे हैं, जिनको एक बार यहाँ से नोटिस

गया या बताया गया तो उन्होंने उसके आगे काम करने के लिए पहले परमीशन मांगी और बहुत लोग हैं, जिन्होंने नहीं मानी तो उनके वो चैनल बंद करवाए या उनका जहां भी उल्लंघन है, उसको हटाया गया किसी तरह से । प्रकाशक पर प्रभाव तो पड़ा है, लेकिन उसका एक सकारात्मक पक्ष यह भी है कि जो लोग अनुमति लेकर उसपर काम कर रहे हैं, उससे किताब की बिक्री बढ़ी है । इसके लिए उदाहरण के तौर पर बहुत सारे कविता संग्रह हैं । जैसे **साए में धूप** है, **संसद से सड़क तक** है,**रश्मिरथी** है, इन सबकी कविताएं जगह जगह बोली जाती हैं, उद्धृत की जाती हैं तो लोग जब पढ़ते-सुनते हैं तो किताब भी खरीदते हैं।

मेधा नैलवाल - ई- पुस्तकों के प्रकाशन का आपका अनुभव कैसा है। इन पुस्तकों को कितने पाठक मिलते हैं? इनका भविष्य क्या है?

आमोद माहेश्वरी - ई-पुस्तकों का बाजार बिल्कुल अलग है । जो किताबें छप रही हैं और जो किताबें ई-बुक के माध्यम से बिक रही हैं, दोनों के लगभग 80% पाठक अलग अलग हैं । जो किताबें हमारी ई-बुक में आ रही हैं, वो दुनिया में कभी-भी कहीं-भी कोई भी पढ़ सकता है और मुद्रित किताबों की एक सीमा है, इनकी उपलब्धता हर पाठक तक हर समय में नहीं हो सकती । ख़रीद के तौर पर ई-बुक ज्यादा सस्ती है । ई-बुक प्रिन्ट मीडिया का एक एक्सटेंशन है, वही तैयारी है, जो प्रिन्ट के लिए करते हैं, बस फ़र्क़ इतना है कि एक कागज़ पर छपती है और एक डिजिटली छपती है, लेकिन दोनों एक ही प्रोसेस से गुजरती हैं । पाठकों की संख्या एक लेखक के लिए और एक प्रकाशक के लिए जोड़े तो बढ़ी है। ई-बुक का पाठक उसमें जुड़ कर वृद्धि करता है। एक नया क्षेत्र और पाठक हैं जिन्हें ई-बुक ने जोड़ा है हमारे साथ ।

मेधा नैलवाल - ऑडियो बुक्स की शुरुआत भी इधर हिन्दी में हुई है। इस क्षेत्र में आपका अनुभव और राय क्या है ?

आमोद माहेश्वरी - ऑडिओ बुक्स भी अच्छा है। ऑडिओ बुक्स और ई-बुक्स का पाठक एक जैसा हो सकता है । जो डिजिटली फ्रेंडली ज्यादा हैं, वो लोग इस माध्यम का ज्यादा लाभ ले सकते हैं। एक अच्छी ऑडिओ को बनाना महंगा प्रोसेस है । वो तीनों माध्यमों में सबसे महंगा है, जिसमें ऑडियो बुक पढ़ना, कन्वर्ट करना, सुनना सब महंगा है ।